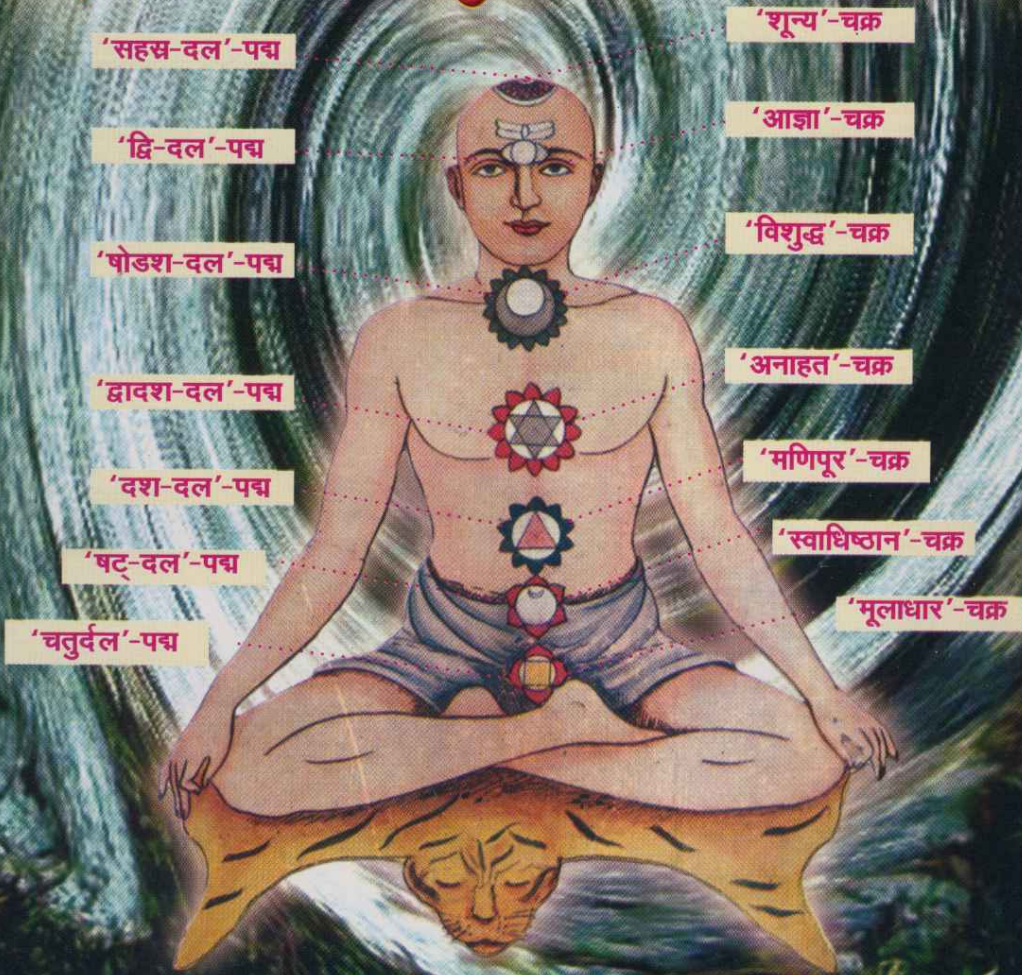


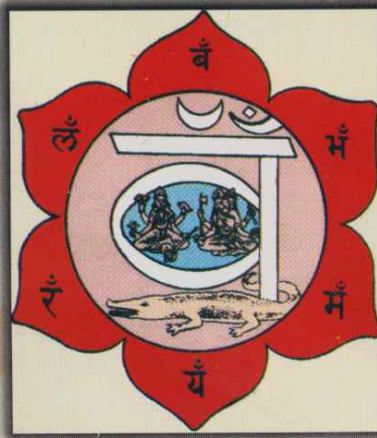


'षट्-चक्र' एवं 'कुण्डलिनी'-साधना





'मूलाधार'-चक्र



'स्वाधिष्ठान'-चक्र

	'मूलाधार' - चक्र	'स्वाधिष्ठान' - चक्र
१. स्थान	गुदा के समीप	लिङ्ग के मूल स्थान में
२. दल	४	६
३. दल की मातृकाएँ	'वं-शं-षं-सं'	'बं-भं-मं-यं-रं-लं'
४. तत्त्व और गुण	पृथ्वी सकलीकरण गन्ध - वाह	जल आकुञ्चन रस - वाह
५. तत्त्व का रङ्ग	पीत	शुभ्र
६. आकार	चतुष्कोण	अर्ध - चन्द्र
७. बीज	'लं'	'वं'
८. वाहन	ऐरावत	मकर
९. देवता	ब्रह्मा	विष्णु
१०. शक्ति	डाकिनी	राकिनी
११. तत्त्व - गुण	गन्ध	रस
१२. इन्द्रिय	पाद	हस्त
१३. लिङ्ग	स्वयम्भू	-
१४. लोक	भूः	भुवः
१५. द्वीप	जम्बू	शाक
१६. कला एवं फल	निवृत्ति आरोग्य वक्तृत्व कार्य - दक्षता	विद्या सर्जन एवं पालन में समर्थ

‘षट्-चक्र’ एवं ‘कुण्डलिनी’ साधना

दुर्लभ मन्त्रात्मक साधना-सहित



सम्पादक

ऋतशील शर्मा



प्रकाशक

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज-२११००६

दूरभाष : ०५३२-२५०२७८३

Website : paravani.org

सर्वाधिकार सुरक्षित

तृतीय संस्करण

अनुदान ४०/-



पावन स्मरण

‘कुण्डलिनी’ की दुर्लभ मन्त्रात्मक साधना एवं
अत्यन्त रहस्य-मय ‘कुण्डलिनी-योग’ को
सरल रूप में प्रस्तुत करनेवाले

परम गुरुदेव
पूज्य गुप्तावतार बाबाश्री
(श्रीभर्तृहर्यानन्दनाथ जी)

गुरुदेव
पूज्य रमादत्त शुक्ल
(श्रीकुलभूषणानन्दनाथ जी) के
श्री-चरणों में ‘नमो नमः’

गुप्तावतार बाबाश्री की पुण्य-तिथि
(१४ नवम्बर, २००९)

अनुक्रम

१. प्रस्तावना	५
२. शक्ति-प्राप्ति के द्वार : 'षट्-पद्म'	९
• पण्डित श्रीकान्तबिहारी मिश्र	
३. साधना व मानव-शरीर	१२
• पण्डित राजेन्द्रकुमार अवस्थी	
४. महा-शक्ति को जाग्रत करने का उपाय : 'षट्-चक्र-भेद'	१५
• पण्डित रमादत्त शुक्ल	
५. श्रीदत्त षट्-चक्र-स्तोत्रम्	२२
६. षट्-चक्रों का वर्णन	२३
• पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री	
७. षट्-चक्र-व्यवस्था	३२
• पण्डित कृष्णानन्द जी मिश्र	
८. श्रीकुण्डलिनी शक्ति	३३
• पण्डित श्रीकान्तविहारी मिश्र	
९. जाग-जाग मूलाधार-निवासिनि!	३८
१०. श्रीकुण्डलिनी शक्ति का वर्णन	३९
• पण्डित श्रीकान्तविहारी मिश्र	
११. आगमोक्त योग-साधना	४४
• स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती	
१२. कुण्डलिनी-तत्त्व का रहस्य	४७
• श्रीअमर सिंह जी	

१३. कुण्डलिनी की मन्त्रात्मक साधना	----	४९
● गुप्तावतार बाबा श्री की कृपा से प्राप्त		
१४. श्रीकुण्डलिनी-कवचं	----	५३
● रुद्र-यामल तन्त्र, उत्तर-खण्ड से संग्रहीत		
१५. श्रीमहा-कुण्डली अष्टोत्तर सहस्र-नाम-स्तोत्र	----	५५
● रुद्र-यामल तन्त्र से संग्रहीत		
१६. ध्यात्वा कुल-कुण्डलिनीं....	----	६३
● पण्डित श्रीबलराम शास्त्री		
१७. 'कुण्डलिनी'-जागरण	----	६५
● पण्डित राजेन्द्रकुमार अवस्थी		
१८. 'कुण्डलिनी'-उत्थापन की क्रिया	----	६७
● श्रीवदन सिंह जी		
१९. 'कुण्डलिनी-योग' का विवेचन	----	७१
● पण्डित रमादत्त शुक्ल		
२०. 'त्रिवली'	----	८६
● कापालिक श्रीउद्बोधनानन्द जी		

प्रस्तावना

‘कुण्डलिनी’—अध्यात्म-साधना का एक प्रमुख अङ्ग अनादि काल से रही है। विविध प्रकार की ‘योग’-साधनाओं की तो यह मूलाधार मानी गई है। **‘षट्-चक्र’-भेदन** कर **‘सहस्रार’** का **‘अमृत’-पान** करने में योगियों का माध्यम यही शक्ति रही है। **‘हठ-योग’** से सम्बन्धित ग्रन्थों में और **‘षट्-चक्र-निरूपण’** जैसी प्रसिद्ध कृतियों में, **शरीरस्थ चक्रों** का विशद वर्णन मिलता है। उसी वर्णन के अनुरूप **‘तन्त्र’-साहित्य** में भी **‘चक्रों का विवरण’** उपलब्ध है। **‘षट्-चक्र-निरूपण’** का तो अंग्रेजी अनुवाद तक कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सर जॉन वुडरफ द्वारा किया गया, जो **‘सर्पेण्ट पावर’** के नाम से विश्व-विख्यात है।

‘कौल-कल्पतरु’ पण्डित देवीदत्त शुक्ल द्वारा संवत् १९९९ वि० में प्रवर्तित **‘चण्डी’**-पत्रिका के लेखों द्वारा जहाँ **‘तन्त्र’** के अनेक गोपनीय रहस्यों पर पहले पहल लोक-भाषा हिन्दी में प्रकाश डाला गया, वहाँ **‘षट्-चक्रों’** एवं **‘कुण्डलिनी’-शक्ति** के सम्बन्ध में भी अनेक विद्वत्ता-पूर्ण निबन्ध उसमें प्रकाशित हुए। प्रस्तुत कृति में **‘चण्डी’** में पूर्व प्रकाशित इन निबन्धों को पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। इन निबन्धों की सहायता से पाठक-बन्धु सहज रूप में **शरीरस्थ चक्रों** एवं **‘कुण्डलिनी’-शक्ति** का रहस्य समझ सकते हैं।

‘श्रीकुण्डलिनी’ की सविधि-साधना के सम्बन्ध में उपयोगी साहित्य का अभी तक अभाव ही दिखाई देता है। जहाँ तक **‘योग’-परक साधना** का सम्बन्ध है, उसके क्रियात्मक स्वरूप का ज्ञान **‘योग’-सम्बन्धी पुस्तकों** से मिल जाता है। समय-समय पर विद्वान् योगियों ने उस सम्बन्ध में अपने अनुभव के आधार पर लेखादि भी लिखे हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के योगिराज सन्त ज्ञानेश्वर ने अपने **‘ज्ञानेश्वरी’**-नामक **‘गीता’-भाष्य** में **‘गीता’** के छठे अध्याय का रहस्य समझाते हुए **‘कुण्डलिनी’-योग** का विस्तृत वर्णन किया है। उसका सारांश यहाँ उद्धृत है, जिससे पता चलता है कि **‘हठ-योग’** द्वारा **‘कुण्डलिनी’** को जाग्रत करना कितना कठिन है और अनुभवी योगी के निर्देशन में ही उस मार्ग का सहारा लिया जा सकता है—

“....पिण्डलियों को जाँघों से सटाकर पालथी मारे। पैरों के दोनों तलवे टेढ़े कर उन्हें **आधार-चक्र** के नीचे (गुद, शिशन के बीच की सीवन पर) ऐसे जमा कर रखे कि वे स्थिर रहें। दाएँ पैर का तलवा नीचे रहे, उसी से सीवन को दबाये। इससे दाएँ पैर पर बाँयाँ पैर ठीक बैठ जायगा। गुद और शिशन के बीच ४ अँगुल जगह है, उसका डेढ़ अँगुल भाग ऊपर और डेढ़ अँगुल नीचे छोड़कर बीच की एक अँगुल जगह को तलवे के उत्तर भाग से जोर से दबाएँ और पीठ के नीचे के भाग को हलके से ऊपर उठाएँ। साथ ही दोनों टखनों को भी ऊपर उठाएँ। यही **‘मूल-बन्ध’ (वज्रासन)** है।

“फिर गले के नीचे गढ़े में ठुड्डी अटका दे। वहाँ दृढ़ता से ठुड्डी को बैठाने से वह छाती को दबाए रखती है। इस प्रकार कण्ठ-मणि दिखाई नहीं देती। यही **‘जालन्धर-बन्ध’** है।

“तब पेट को पिचका कर पीठ से लगाएँ। शिशन-स्थान के किनारे और नाभि के नीचे **‘उड्ड्यान बन्ध’** लगता है।

“इस प्रकार 'मूल-बन्ध' से अपान वायु रुकता है और ऊपर अटक कर पृथ्वी और जल के अंशों को एक-दूसरे में मिलाता है। इसी समय 'वज्रासन' की उष्णता से 'कुण्डलिनी-शक्ति' जागती है।

“....'कुण्डलिनी' जब जागती है, तब बड़े वेग के साथ झटका देकर ऊपर की ओर अपना मुँह फैलाती है। ऐसा मालुम होता है कि जैसे बहुत दिनों की भूखी हो और अब जागने के साथ ही खाने को अधीर हो उठी हो। अपनी जगह से नहीं हटती, पर शरीर में पृथ्वी और जल के जो भाग हैं, उन सबको चट कर जाती है।....”

'योग'-परक साधना की यह दुरुहता स्वामी चिन्मयानन्द जी द्वारा प्रस्तुत 'कुण्डलिनी'-जागरण की विधि से भी स्पष्ट होती है। आप लिखते हैं कि—

“....अब मैं एक अनुभव-सिद्ध प्रणाली का संक्षेप में वर्णन करता हूँ—

(१) साधक को सबसे पहले नेती, धौती, वस्ति आदि क्रियाओं द्वारा 'देह'-शुद्धि करनी चाहिए।

(२) पश्चात् अष्ट प्रकार के 'प्राणायाम' की शिक्षा लेनी चाहिए।

(३) प्राणायामों के पीछे मुद्राएँ अर्थात् 'महा-मुद्रा', 'महा-बन्ध', 'महा-बेध', 'विपरीत-करणी', 'तारण', 'परिधान-युक्ति-चालन', 'शक्ति-चालनी' आदि भी सीखनी चाहिए।

याद रहे, इन प्राणायामों तथा मुद्राओं को सदा 'बन्ध-त्रय' के साथ ही करना चाहिए, अन्यथा विषम फल होने की सम्भावना है।

(४) पश्चात् 'राज-योग' की विधि के अनुसार 'षट्-चक्रों में भावनाएँ' करनी पड़ती हैं।....”

उक्त विधि के साथ ही स्वामी जी ने प्रति-दिवस का साधन-क्रम भी निर्दिष्ट किया है, जो यहाँ शब्दशः उद्धृत है—

“प्रतिदिन प्रातःकाल चार बजे शय्या त्याग कर 'देह-शुद्धि' के पश्चात् ५ बजे से ९ बजे तक का कार्य-क्रम—

(१) भस्त्रिका प्राणायाम, दोनों प्रकार का—५ से २५ प्राणायाम तक।

(२) शक्ति-चालनी मुद्रा, उभय प्रकार की—प्रत्येक ५ से १० तक।

(३) ताड़न मुद्रा—४ प्राणायाम में १०१ तक।

(४) परिधान-युक्ति-चालन—४ प्राणायाम में १०१ तक।

(५) पश्चात् बाकी समय में षट्-चक्र-भेदन की मानसिक क्रियाएँ या संयम।

....पुनः सायं ४ बजे से ९ बजे तक का कार्यक्रम—

(१) 'महा-मुद्रा'—प्रत्येक पैर पर ५ से २५ तक, (२) 'महा-बन्ध'—प्रत्येक पैर पर ५ से २५ तक,

(३) 'महा-बेध'—उभय प्रकार का ५ से १० तक, (४) 'विपरीत-करणी-मुद्रा'—५ से १० तक, (५) शेष समय में 'षट्-चक्र-भेदन' की क्रियाएँ (राज-योग)।”

'कुण्डलिनी-जागरण' के लिए यौगिक साधना का जो रूप उक्त विवरण से ज्ञात होता है, वह गृहस्थ साधकों के लिए प्रायः असाध्य ही है। यही नहीं, संन्यासी या ब्रह्मचारी साधकों के लिए भी वह असाध्य नहीं, तो सरल भी नहीं है। स्वयं स्वामी चिन्मयानन्द जी ने एक स्वामी जी का जो हाल लिखा है, उससे यौगिक मार्ग की क्लिष्टता प्रमाणित होती है। आप लिखते हैं कि—

“.....मेरे ही साथ दूसरे एक स्वामी जी थे। वे 'कुण्डलिनी'-शक्ति को जागृत करने के लिए सन्नद्ध थे। वह यह कहते थे कि 'मैं गुरु जी द्वारा निर्दिष्ट तीन से छः मास की अवधि के बीच में 'कुण्डलिनी'-शक्ति को जगाकर दिखा दूँगा।' इस सङ्कल्प पर अड़कर उन्होंने अभ्यास तो बहुत किया, परन्तु भावना के समय देवताओं पर उनकी श्रद्धा बिल्कुल नहीं थी क्योंकि वे आर्य-समाज के विचार वाले थे।.... लगभग तीन मास के पीछे एक दिन वे मेरे पास आकर रो पड़े और कहने लगे कि 'मेरे मुख से बहुत रुधिर वमन होता है। अब मैं क्या करूँ?' मैं उनको साथ लेकर गुरुजी के पास गया। गुरुजी उन्हें देखकर कहने लगे, 'तुम अविश्वासी हो, तुम्हारी श्रद्धा बिल्कुल नहीं है। यह उसी का परिणाम है। अब तुम इस क्रिया को छोड़ो, नहीं तो तुम्हारा कल्याण कठिन है।' इसके अतिरिक्त गुरुजी ने कुछ औषधि भी बताई। परन्तु उन्होंने उस पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और थोड़ी-बहुत क्रिया भी करते रहे। अन्त में जब रोग बहुत बढ़ गया, तब किसी परिचित के यहाँ अलीगढ़ जिले में चले गए और थोड़े दिनों में उनका वहीं अन्त हो गया।....”

अब हमारा ध्यान जाता है 'कुण्डलिनी की मन्त्रात्मक साधना' पर। कुछ वर्षों पूर्व हमें गुप्तावतार बाबाश्री के अनन्य शिष्य पण्डित रमाशङ्कर पण्ड्या से बाबाश्री के हाथ की लिखी एक डायरी मिल गयी थी। यह उन अनेक डायरियों में से एक थी, जिनमें बाबाश्री ने लुप्त-प्राय तन्त्र की विशिष्ट बातों को दिव्य शक्ति से संगृहीत किया था। दुःख का विषय है कि अधिकांश डायरियाँ तो दीमक द्वारा खाई जाकर समुद्र में प्रवाहित कर दी गईं किन्तु एक डायरी पण्ड्या जी की कृपा से हमारे हाथ आ गई। उसी डायरी में एक स्थल पर 'कुण्डलिनी का मन्त्रात्मक विधान' हमें पहले पहल स्पष्ट रूप में लिखा मिला। तभी हमने उसके प्रकाशन का विचार किया था किन्तु परिस्थितियों-वश वह शीघ्र प्रकाशित न हो सका। 'चण्डी' के 'षट्-चक्र' एवं 'कुण्डलिनी'-विषयक निबन्धों के प्रस्तुत संग्रह के प्रकाशन की योजना जब साकार हुई, तभी उक्त 'कुण्डलिनी का मन्त्रात्मक विधान' प्रकाशित हो सका है।

'कुण्डलिनी का मन्त्रात्मक विधान' कोई नया विधान नहीं है, इसका उल्लेख अनेक तन्त्रों में हुआ है किन्तु इस विधान के प्रति यथोचित ध्यान किसी के द्वारा अभी तक नहीं दिया गया है, यह एक आश्चर्य की ही बात है। तन्त्रोक्त विविध 'कुण्डलिनी-मन्त्रों' की साधना भी कदाचित् कुछ ही साधकों ने की होगी और जिन्होंने की भी होगी, उन्होंने आज तक कहीं उसके सम्बन्ध में अपनी अनुभूति का कोई वर्णन नहीं किया है। यही नहीं, 'कुण्डलिनी-मन्त्र-साधना' की स्वतन्त्र पद्धति भी आज तक प्रकाश में नहीं आई है, उसका प्रचार होना तो दूर रहा। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि 'कुण्डलिनी' की भावना 'इष्ट-देवता'-स्वरूप में करने की परम्परा रही है और ऐसा विश्वास रहा है कि इष्ट-देवता की उपासना एवं इष्ट-मन्त्र के सतत जप द्वारा 'कुण्डलिनी' का जागरण स्वतः हो जाता है। ऐसी दशा में 'कुण्डलिनी मन्त्र' की साधना का उपेक्षित रह जाना स्वाभाविक था।

कुछ भी हो, 'कुण्डलिनी'-मन्त्र का जब स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है, उसका अलग पूरा साधना-विधान रहा है, तो उसकी स्वतन्त्र साधना भी सर्वथा आवश्यक है। इस कथन की पुष्टि में प्रसिद्ध 'श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र' (काश्मीर संस्करण, पृष्ठ ९१) का निम्न उद्धरण मननीय है—

॥ अथ कुण्डलिनी-मन्त्रः॥

वाग्भवं भुवनेशी च, श्री-बीजं तथैव च। त्र्यक्षरो मन्त्र आख्यातः, कुण्डलिन्याः सु-सिद्धिदः॥
ऋषिः शक्तिः समाख्यातो, गायत्री छन्द ईरितं। चेतना-कुण्डली-शक्तिर्देवतात्र समीरितः॥
वाग्भवं बीजमाख्यातं, शक्तिः श्रीबीजमुच्यते। हल्लेखा कीलकं प्रोक्तं, कुण्डलिन्यास्तु चिन्तने॥
विनियोगः समाख्यातः, सर्वागम-विशारदैः। बीज-त्रय-द्विरावृत्या, षडङ्ग-न्यास ईरितः॥
ध्यानं वक्ष्यामि कुण्डल्याः, सावधानतया शृणु। मूलाधारे त्रिकोणे तु, सूर्य-कोटि-समत्विषि॥
प्रसुप्त-भुजगाकारां, सार्द्ध-त्रिवलय-स्थितां। नीवार-शुक-वत्-तन्वीं, तडित्-कोटि-सम-प्रभां॥
सूर्य-कोटि-प्रभां दीप्तां, चन्द्र-कोटि-सुशीतलां। शिव-शक्ति-मयीं देवीं, शङ्खावर्त-क्रमात् स्थितां॥
सुषुम्ना-मध्य-मार्गेण, यान्तीं पर-शिवावधि। ह्रींकार-बीज-रूपेण, चिन्तयेद् योग-वर्त्मना॥

सिन्दूरारुण-विग्रहां त्रि-नयनां माणिक्य-मौलि-स्फुरत् -

तारा-नायक-शेखरां स्मित-मुखीमापीन-वक्षोरुहाम् ।

पाणिभ्यां मणि-पूर्ण-रत्न-चषकं रक्तोत्पलं विभ्रतीम्,

सौम्यां रत्न-घटस्थ-सव्य-चरणां ध्यायेत् परामखिकाम् ॥

स्पष्ट है कि यहाँ कुण्डलिनी के त्र्यक्षर मन्त्र (ऐंह्रींश्री) का उद्धार उसके विनियोग, षडङ्ग-न्यास और ध्यान सहित दिया गया है। प्रारम्भिक साधकों के लिए इस मन्त्र की साधना श्रेयस्कर है। अभिषिक्त साधकों के लिये पूज्य बाबा श्री द्वारा निर्दिष्ट बृहत् मन्त्रों की साधना उपयुक्त है, जो विस्तार से प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में दी गई है। यही नहीं, प्रख्यात 'शारदातिलक तन्त्र' से 'कुण्डलिनी-स्तोत्राष्टक', 'रुद्र-यामल तन्त्र' से 'श्रीकुण्डलिनी कवच' एवं 'श्रीमहा-कुण्डली-सहस्र-नाम स्तोत्र' भी उद्धृत हैं। इस प्रकार 'कुण्डलिनी-मन्त्र' के पुरश्चरण हेतु लगभग पूरी विधि यहाँ दी गई है।

हमें विश्वास है कि 'षट्-चक्र' एवं 'कुण्डलिनी'-विषयक प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह से सभी पाठक बन्धु पूर्णतया लाभान्वित होंगे। इसी में हमारे श्रम की सार्थकता भी है।

प्रयाग-राज

विनीत

कुल-भूषण

शक्ति-प्राप्ति के द्वार : 'षट्-पद्म'

• पण्डित श्रीकान्तबिहारी मिश्र

'शरीर' प्रकृत 'देवालय' है — 'आत्मा' का वास - स्थान है। जगत् के समान 'शरीर' भी परिवर्तन-शील है, किन्तु मिथ्या नहीं है। 'शरीर', 'आत्मा' की अधिष्ठान - भूमि है। 'आत्मा' जब सत्य है, तब उसकी अधिष्ठान - भूमि भी सत्य है — यह असत्य नहीं हो सकती। अपने 'शरीर' का वास्तविक ज्ञान न रहने से शरीरी (जीव) द्वारा कोई कार्य सु - सम्पन्न नहीं हो सकता। जिस प्रकार 'देवालय' को सर्वदा परिष्कृत रखना होता है, उसी प्रकार 'शरीर - रूपी देवालय' को बाहर और भीतर से परिष्कृत रखना चाहिए। स्वास्थ्य - रक्षा के सहज सरल नियमों के पालन और स्नान - शौचादि द्वारा 'शरीर' बाहर से परिष्कृत होता है और कु-चिन्ता, कु-ग्रन्थ - पाठ, कुत्सित चित्रादि-दर्शन इत्यादि का त्याग करने और भगवच्चिन्तन, सद्-ग्रन्थ-पाठ, देवतादि-दर्शन से 'शरीर' का भीतरी परिष्कार होता है।

'शरीर' में 'मस्तिष्क' चेतना का मुख्य केन्द्र है। 'चेतना' के कई उप-केन्द्र भी हैं। उप-केन्द्रों में चेतना की विशिष्ट वृत्ति का अनुभव होता है, परन्तु सभी वृत्तियों का नहीं। सभी वृत्तियों का अनुभव केवल 'मस्तिष्क' में ही होता है। मुख्य केन्द्र (मस्तिष्क) के साथ सभी उप-केन्द्रों (स्नायु-ग्रन्थियों) का सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा — इन तीन नाड़ियों द्वारा साधित होता है। ये तीनों नाड़ियाँ — 'शरीर - त्रितन्त्री' कहलाती हैं।

वास्तव में, हम लोगों का शरीर 'सितार' की भाँति है। 'सितार' - शब्द में 'से' (तीन-वाची) और 'तार' — त्रि - तन्त्री है। अन्तर केवल इतना है कि सितार का अलाबू नीचे होता है और शरीर- रूपी सितार का अलाबू (मस्तिष्क) ऊर्ध्व - दिशा में है। सितार को अँगुली द्वारा मेजराफ के सहारे मृदु - मृदु आघात कर बजाना होता है, किन्तु 'देह - रूपी सितार' को 'प्राण - शक्ति' के आघात द्वारा बजाना होता है।

'शरीर' में 'चेतना' के सात उप-केन्द्रों में ४६ प्रकार के 'प्राण' हैं। चेतना के सात उप-केन्द्र इस प्रकार हैं — १ सहस्रार, २ आज्ञा, ३ विशुद्ध, ४ अनाहत, ५ मणिपुर, ६ स्वाधिष्ठान और ७ मूलाधार।

जिस प्रकार सितार में तीन ग्राम होते हैं — १ तारा, २ मुदारा और ३ उदारा, उसी प्रकार देह-रूपी सितार में भी तीन ग्राम हैं — १ स्वर्ग, २ मर्त्य और ३ पाताल। कण्ठ के ऊपरी भाग में 'स्वर्ग', कण्ठ से नाभि तक 'मर्त्य' और नाभि से गुह्य पर्यन्त 'पाताल' है।

सभी जानते हैं कि 'सितार' के ठीक स्थान से सुर के बाहर आने पर 'लयावस्था की प्राप्ति' होती है। जैसे 'सितार' के ठीक स्थान से सुर निकालने के लिए 'घाट' का परिष्कार करना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार आभ्यन्तरिक लय अथवा शक्ति की प्राप्ति के लिए 'शरीर' - रूपी सितार के 'घाट' को भी परिष्कृत करना आवश्यक है। 'शरीर' में स्वाधिष्ठान, अनाहत और आज्ञा — इन तीनों में एक-एक 'घाट' है। जो 'शरीरी' इन घाटों का क्रमशः भेदन करता है, वही 'शरीर-रूपी महा-शक्ति' का उत्तरोत्तर वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'शरीर'-रूपी सितार के उक्त 'घाट - त्रय' के परिष्कृत न रहने से जीवनी शक्ति का स्वर ठीक-ठीक प्रकट नहीं होता। जीवनी - शक्ति का बेसुर, बेताल, बेलय उत्थान होता है। 'मन्त्र' भी देवता के शब्द - रूप हैं। सुर - रूप है, ताल - रूप है। 'घाट' के परिष्कृत न होने से 'मन्त्र' - जागृति नहीं होती। स्वाधिष्ठान, अनाहत और आज्ञा - रूपी घाटों के परिष्कृत होने पर 'ब्रह्म-विद्या-मय नाद' का उत्थान होता है। हाथों में सितार लिए हुए देवर्षि नारद इसी रहस्य के प्रतीक हैं। कहा भी गया है — 'नारं विज्ञानं ब्रह्म - विद्यां वा ददाति इति नारदः।'

भगवान् श्रीकृष्ण की बाँसुरी भी उनका शरीर ही थी। उनके 'शरीर - रूपी सितार' से निःसृत ध्वनि को सुनकर चराचर मुग्ध होता था।

ऊपर 'शरीर' - रूपी सितार में 'चेतना' के ७ उप - केन्द्रों का उल्लेख है। ये क्रमशः १ मस्तक (ब्रह्मरन्ध्र) में 'सहस्रार', २ भ्रू-मध्य में 'आज्ञा', ३ कण्ठ - देश में 'विशुद्ध' ४ हृदय में 'अनाहत', ५ नाभि - मूल में 'मणिपुर', ६ लिङ्ग - मूल में 'स्वाधिष्ठान' तथा ७ गुह्य - देश के दो अंगुल ऊपर 'मूलाधार' के नाम से जाने जाते हैं। 'मूलाधार' में 'कुण्डलिनी' (जीवनी - शक्ति) सुप्तावस्था में रहकर सतत मधुर स्फुट - नाद करती रहती रहती है।

मेरु - दण्ड के भीतर वाम - भाग में चन्द्र - प्रभा - विशिष्ट 'इड़ा नाड़ी' है और दक्षिण - भाग में सूर्य - प्रभा - विशिष्ट 'पिङ्गला नाड़ी' है। मध्य में, चन्द्र - सूर्य - अग्नि - प्रभा - विशिष्ट 'सुषुम्णा नाड़ी' है। 'सुषुम्णा नाड़ी' मूलाधार से लेकर आज्ञा - चक्र पर्यन्त विस्तृत है। 'सुषुम्णा' को 'इड़ा' व 'पिङ्गला' नाड़ियाँ ५ स्थानों में अंग्रेजी के ८ के समान (8) वेष्टित किए हुए हैं, वहीं 'स्वाधिष्ठान' से 'आज्ञा' - पर्यन्त पाँच चक्र हैं। 'सुषुम्णा' के मध्य में, अति सूक्ष्म वज्रा, चित्रिणी आदि नाड़ियाँ हैं।

गुह्य-देश के ऊर्ध्व में और लिङ्ग के निम्न भाग में तथा 'सुषुम्णा नाड़ी' के मुख में चार दल-विशिष्ट रक्त - वर्ण अधोमुख एक 'पद्म' है। यह 'कुण्डलिनी' — जीवनी - शक्ति का आधार है। अतः इसे 'आधार पद्म' कहा जाता है। इसके दलों में, 'व-श-ष-स' चार मातृका - शक्तियाँ हैं। दलों के मध्य में 'चतुष्कोण' एवं उसके मध्य में स - शक्ति सृष्टि-कारी ब्रह्मा विराज रहे हैं। यहाँ पहुँचे शरीरी को सृष्टि अर्थात् 'करत्त्व' का भान होता है।

'सुषुम्णा' के भीतर, उक्त 'आधार पद्म' के किञ्चित् ऊर्ध्व लिङ्ग - मूल में, अरुण वर्ण अधो-मुख छः दलोंवाला 'स्वाधिष्ठान-पद्म' है। इसके छः दलों पर 'व-भ-म-य-र-ल' — 'मातृका - शक्तियाँ' हैं। दलों के मध्य में अर्द्ध - चन्द्राकार एक मण्डल है, जिसमें स - शक्ति चतुर्भुज 'विष्णु' विराजमान हैं। यहाँ पहुँचे 'शरीरी' को कुछ करने के लिए वास्तविक आधार की प्राप्ति होती है।

इसके कुछ ऊपर नाभि - मूल में, दश - दलों वाला नील - वर्ण 'मणिपुर-पद्म' है। इसके दलों में 'ड' से 'फ' पर्यन्त दश 'मातृका - शक्तियाँ' हैं। दलों के मध्य में शोणित-वर्ण 'त्रिकोण' है, जिसमें स - शक्ति लोहित-वर्ण 'रुद्र' विद्यमान हैं। यहाँ पहुँचे 'शरीरी' को 'करत्त्व' के साथ-साथ 'भवत्त्व' का भी भान होता है। और ऊपर हृदय - देश में, 'सुषुम्णा' के भीतर लोहित-वर्ण एवं द्वादश-दल वाला 'अनाहत-पद्म' है। इसके द्वादश दलों में 'क' से 'ठ' पर्यन्त द्वादश 'मातृका - शक्तियाँ' हैं। दलों के मध्य

में धू
यहाँ

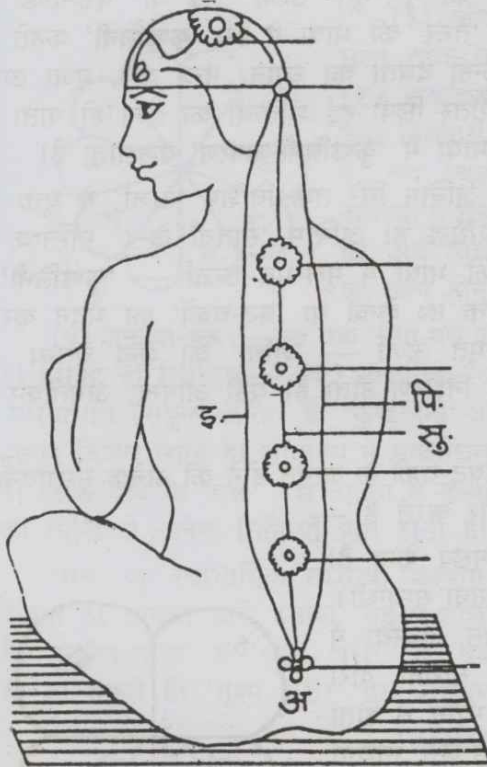
पद्म
पूर्ण-
'शरी

दलों
और

में धूम्र - वर्ण 'षट् - कोण' है, जिसमें 'ईशान' नामक शिव विराजमान हैं। ये अपनी शक्ति के साथ यहाँ पहुँचे 'शरीरी' को 'अभय' और 'वर' प्रदान करते हैं।

हृदय - देश के ऊपर कण्ठ - देश में, 'सुषुम्णा' के भीतर धूम्र-वर्ण एवं षोडश-दल वाला 'विशुद्ध'-पद्म है। इसके षोडश दलों में 'अ' से 'अः' तक सोलह 'स्वर - मातृका - शक्तियाँ' हैं। दलों के मध्य में पूर्ण-चन्द्र-वत् शुभ्र गोलाकार मण्डल है, जिसमें स - शक्ति 'सदा-शिव' विराजमान हैं। यहाँ पहुँचे 'शरीरी' को 'पूर्णत्व' का भान होता है।

कण्ठ - देश के ऊपर भ्रू - मध्य में, शुक्ल-वर्ण एवं दो दलवाला 'आज्ञा - पद्म' है। इसके दो दलों में 'ह' और 'क्ष'-दो 'मातृका - शक्तियाँ' हैं। दलों के मध्य में, स-शक्ति 'इतर' नामक शिव-लिङ्ग और प्रणव विराजमान हैं। यहाँ पहुँचे 'शरीरी' को 'ब्रह्म - विद्या' का पूर्ण - ज्ञान होता है।



संक्षेप में, चरित्रवान् 'शरीरी' ही सद्-गुरु के सान्निध्य में, महा-शक्ति-प्राप्ति के द्वार-स्वरूप उक्त 'षट् - पद्मों' के सम्बन्ध में ज्ञान - लाभ कर सकते हैं। भक्ति - मार्ग से खूब व्याकुल होकर इच्छा करने पर अथवा रोने पर उक्त 'छः पद्म' जाग्रत् हो उठते हैं और भक्त को 'महा - शक्ति' का दर्शन होता है। परमहंस रामकृष्णदेव छहों पद्मों को जाग्रत् करने के लिए, प्रार्थना - स्वरूप, एक गीत गाने को कहते थे। वह गीत इस प्रकार है —

जागो माँ कुल-कुण्डलिनी! तुमि ब्रह्मानन्द-स्वरूपिणी।
तुमि नित्यानन्द - स्वरूपिणी,
प्रसुप्त भुजगाकारा आधार-पद्म-वासिनी॥
त्रिकोणे ज्वले कृशानु (अग्नि) तापित होइल तनु,
मूलाधार त्यज शिवे! शम्भु-सिर-वेष्टिनी।
गच्छ सुषुम्नार - पथे स्वाधिष्ठाने होउ उदय,
मणिपूर - अनाहत - विशुद्धाज्ञा - सञ्चारिणी।
शिरसि सहस्र - दले परम - शिवे ते मिले,
क्रीड़ा कर कुतूहले सच्चिदानन्द - दायिनी!

वास्तव में, हम लोगों का शरीर 'सितार' की भाँति है। 'सितार' - शब्द में 'से' (तीन-बाची) और 'तार' त्रि - तन्त्री है। अन्तर केवल इतना है कि सितार का अलाबू नीचे होता है और शरीर- रूपी सितार का अलाबू (मस्तिष्क) ऊर्ध्व - दिशा में है। सितार को अँगुली द्वारा मेजराफ के सहारे मृदु - मृदु आघात कर बजाना होता है, किन्तु 'देह - रूपी सितार' को 'प्राण - शक्ति' के आघात द्वारा बजाना होता है।



साधना व मानव-शरीर

• 'कुल-वाणी-रत्न' श्री राजेन्द्रकुमार अवस्थी, हिरण्यमगरी, उदयपुर

सारा विश्व वास्तव में 'ऊर्जा' का ही विस्तार है। सभी दिखाई देनेवाले पदार्थ 'ऊर्जा' से युक्त हैं। विचार, अनुभव, चेतना, भाव आदि सभी 'ऊर्जा' के ही सूक्ष्म रूपान्तर मात्र हैं।

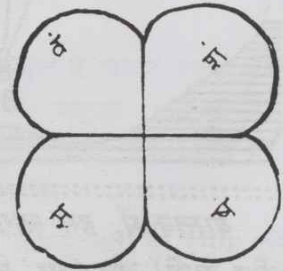
संसार में, जो कुछ भी है, वह भिन्न-भिन्न रूपों में 'ऊर्जा' ही है।

हमारे शरीर की मूल-भूत 'ऊर्जा' रीढ़ या 'मेरु-दण्ड' के सबसे निचले भाग में विद्यमान है। 'योग' और 'तन्त्र' की भाषा में इसे 'कुण्डलिनी' कहते हैं। इसकी अनुभूति हमें तब होती है जब हम किन्हीं देवता का ध्यान, मन्त्र जप, पूजा आदि करते हैं। इसकी अनुभूति होने पर हमें अपने भीतर छिपी हुई शक्तियों का ज्ञान हो पाता है। इस ज्ञान का होना ही 'योग' और 'तन्त्र' की भाषा में 'कुण्डलिनी-जागरण' कहलाता है।

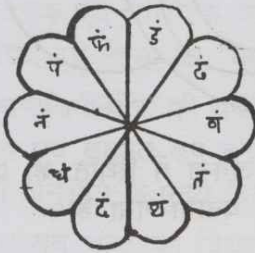
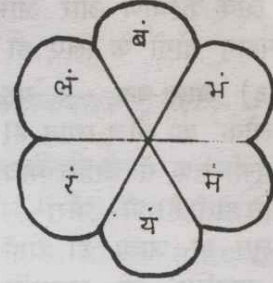
'मेरु-दण्ड' के निचले सिरे से लेकर ऊपरी अन्तिम सिरे तक विशिष्ट 'ऊर्जा' से युक्त छः केन्द्र या 'चक्र' हैं। ये 'षट्-चक्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। अन्तिम 'सातवाँ केन्द्र' मस्तिष्क में 'सहस्रार' के नाम से प्रख्यात है। 'तन्त्र-शास्त्र' की भाषा में मूल-भूत ऊर्जा — 'कुण्डलिनी' - शक्ति जाग्रत होकर ऊपर को उठती है और उक्त छः केन्द्रों या 'षट्-चक्रों' का भेदन करती हुई 'सहस्रार' में पहुँचती है। 'सहस्रार' में मूल-भूत ऊर्जा — 'शक्ति' का शुद्ध चैतन्य — 'शिव-तत्त्व' से मिलन होता है। तब 'अमृत' का निर्झरण होता है। यही आनन्द, अमृतीकरण, अमृत-पुत्र की अवस्था है।

हमारे शरीर में स्थित उक्त 'ऊर्जा-केन्द्रों' या 'षट्-चक्रों' के जाग्रत होने की अनेक सम्भावनाएँ हैं। सबसे पहले हम इन्हीं सम्भावनाओं पर विचार करते हैं —

(१) **मूलाधार-चक्र**— यह हमारे शरीर का मुख्य केन्द्र है। इसकी दो स्थितियाँ हैं— (१) प्राकृतिक (काम-वासना सम्बन्धी), (२) साधना-गत (ब्रह्मचर्य सम्बन्धी)। साधना-गत अवस्था में काम-वासना का रूपान्तर होता है। प्रारम्भ में साधना द्वारा काम-वासना का रूपान्तर संयम अथवा कठोर अभ्यास से होता है, किन्तु इससे वास्तविक लाभ नहीं होता। जैसे-जैसे साधना के स्तर का विकास होता है, वैसे-वैसे विवेक की वृद्धि होती है और काम-वासना सहज रूप में रूपान्तरित होती है। काम-वासना के रूपान्तरित होते ही हम शरीर में स्थित तत्त्वों के गुणों से परिचित होने लगते हैं और हममें छिपी हुई 'ऊर्जा' जाग्रत होकर क्रिया-शील हो उठती है।

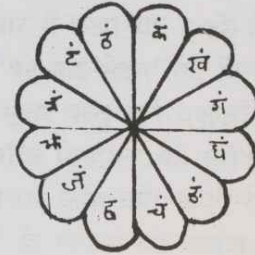


(२) **स्वाधिष्ठान-चक्र** — यह चक्र 'भाव-शरीर' का केन्द्र है। इसे 'वासना-लोक' भी कहते हैं। इसकी भी दो सम्भावनाएँ हैं— (१) प्राकृतिक अर्थात् भाव-शरीर-सम्बन्धी नैसर्गिक घृणा, भय, लज्जा, हिंसा, द्वेष, क्रोध आदि एवं (२) साधना-गत अर्थात् प्रेम, अभय, अहिंसा, मैत्री, करुणा आदि। इस चक्र के भेदन से प्रेम, अभय, अहिंसा, मैत्री, करुणा आदि भाव सहज रूप में आविर्भूत होते हैं। साधना द्वारा हम जितनी मात्रा में उक्त भावों को ग्रहण करने के योग्य बनते हैं, उतनी ही मात्रा में उक्त भाव उत्पन्न होते हैं। प्रेम, अभय, करुणा आदि भावों के स्थायी होने पर इस 'चक्र' का भेदन होता है।

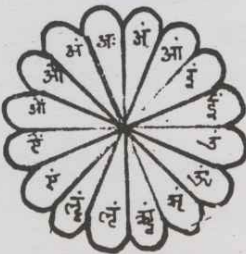


(३) **मणिपुर-चक्र** — यह चक्र 'सूक्ष्म शरीर' से सम्बन्धित सूक्ष्म लोक का बीज-स्थान है। इसकी भी दो स्थितियों हैं — (१) प्राकृतिक (सन्देह और विचार), (२) साधना-गत (श्रद्धा और विवेक)। साधना द्वारा जब सन्देह पर भी सन्देह होने लगता है, तब 'श्रद्धा' का जन्म होता है। इसी प्रकार विचार-शून्य अवस्था से शुद्ध निश्चय या 'विवेक' का जन्म होता है। 'विचार-शून्य' का अर्थ विचार-हीनता नहीं है, अपितु विचारों में स्थित सन्देह का लोप होना है।

(४) **अनाहत-चक्र** — यह चक्र 'मनो-मय शरीर' का बीज-स्थान है। इसकी दो स्थितियाँ— (१) प्राकृतिक (कल्पना-शक्ति), (२) साधना-गत (सङ्कल्प-शक्ति) हैं। 'कुण्डलिनी'-जागरण की साधना में इसका विशेष स्थान है। जीवात्मा से सम्बन्धित यह अन्तिम 'चक्र' है। इसके बाद के 'चक्र' उच्च आत्मा से सम्बन्धित हैं। इस 'चक्र' की सिद्धि से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।



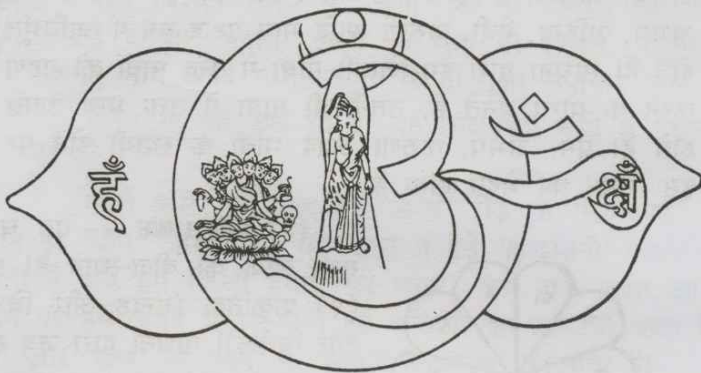
'मन' का स्वाभाविक स्वभाव 'कल्पना' करना या 'स्वप्न' देखना है। साधना द्वारा इसका 'सङ्कल्प-शक्ति' में रूपान्तर होता है। 'सङ्कल्प-शक्ति' से 'स्थूल शरीर' से 'सूक्ष्म शरीर' में सहज ही जा सकते हैं। 'सूक्ष्म शरीर' पर अधिकार होने से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं।



(५) **विशुद्ध-चक्र** — शुद्ध आत्मा से सम्बन्धित यह प्रथम 'चक्र' है। यहाँ द्वैत भाव की समाप्ति हो जाती है। प्राकृतिक और साधना-गत दो प्रकार की सम्भावनाएँ यहाँ समाप्त हो जाती हैं। साधक पूर्णतया आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। 'आत्म-शरीर' से साधक 'आत्म-लोक' में प्रवेश करता है। 'योग' में इसे 'पिप्पिला-मार्ग' कहते हैं। इस लोक में प्रवेश के लिए योग में २८ मार्ग बताए गए हैं। 'योग' के द्वारा बताए गए

'पिप्पिला-मार्ग' के अतिरिक्त अवधूत, विहङ्गम, सिद्ध' आदि अनेक मार्ग हैं। इन मार्गों द्वारा 'आत्म-लोक' में रहनेवाली अनेक महान् आत्माएँ हमारी भारत-भूमि में अवतरित हुई। इनके द्वारा लोक-कल्याण और आध्यात्मिक विकास का सूत्रपात हुआ। आगे चलकर कालान्तर में ऐसे महान् लोगों के लिए ही 'बुद्ध' 'तीर्थङ्कर' आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है।

(६) आज्ञा-चक्र — यह 'ब्रह्म-लोक' का बीज-स्थान है। यहाँ पूर्ण रूप से अद्वैत-भाव की प्राप्ति होती है। 'मैं', 'मेरा'— यहाँ लुप्त हो जाता है। यहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति होती है। इसके पश्चात् कुछ जानना शेष नहीं रहता।



(७) सहस्रार-चक्र — यह परम निर्वाण परम ज्ञान, आत्मा के निज-लोक का स्थान है। इसके सम्बन्ध में शब्दों द्वारा वर्णन करना सम्भव नहीं। यहीं शून्यावस्था, अनन्त में स्थिति की प्राप्ति होती है। इसे शास्त्रों में 'निर्वाण, असम्प्रज्ञात समाधि' जैसे नामों से बताया गया है।



महा - शक्ति को जाग्रत करने का उपाय :

षट्-चक्र-भेद

• श्री रमादत्त शुक्ल, प्रयागराज (उ०प्र०)- २११००६

‘शक्ति-उपासना’ में ‘षट्-चक्र-भेद’ का बड़ा महत्त्व है। इसे ‘कुण्डलिनी-योग’ या ‘लय-योग’ भी कहते हैं। संक्षेप में इस योग का परिचय यह है कि इसके द्वारा शरीर में मेरु-दण्ड के आधार-स्थान में स्थित ‘कुण्डलिनी’ नामक अनुपम महा-शक्ति को जाग्रत किया जाता है, जो वहाँ सुप्तावस्था में सर्प की भाँति कुण्डली के रूप में पड़ी रहती है। इसे जाग्रत कर शरीर-स्थित मुख्य ‘षट्-चक्रों’ में से ले जाया जाता है। इस ‘योग’ के अभ्यास से आश्चर्य-जनक शक्ति उत्पन्न होती है और साधक को एक नई मानसिक एवं शारीरिक ओजस्विता प्राप्त होती है। इससे शरीर के सभी तत्त्वों की शुद्धि हो जाती है। अतएव इस क्रिया को ‘भूत-शुद्धि’ नाम भी दिया गया है।

‘कुण्डलिनी-योग’ की चर्चा यौगिक उपनिषदों और पुराणों में भी पाई जाती है, परन्तु इसका पूर्ण विकसित एवं संस्कृत रूप तन्त्रों और आगमों में ही देखने को मिलता है। तन्त्रों के अनुसार मानव शरीर में अनुभूति के मुख्य केन्द्र वे ‘चक्र’ हैं, जो मस्तिष्क के ऊपरी भाग में स्थित हैं।

इन सब चक्रों का विवरण परमहंस स्वामी पूर्णानन्द कृत ‘षट्-चक्र-निरूपण’ में विस्तार-पूर्वक पढ़ने को मिलता है। पूर्णानन्द जी १६ वीं शताब्दी में एक सुप्रसिद्ध तान्त्रिक साधक हो गए हैं। इनका जन्म बङ्गाल के मैमनसिंह जिले में एक अत्यन्त प्रतिष्ठित ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके विषय में लोगों में यह कथा काफी प्रचलित है कि जब अपने गुरु-देव से ये ‘षट्-चक्र-भेदन’ की क्रिया सीख रहे थे, तब इन ‘चक्रों’ को पहले-पहल समझ नहीं सके। ‘चक्र’ जैसी सूक्ष्म वस्तु चर्म-चक्षुओं से देखी तो जा नहीं सकती और बिना प्रमाणित हुए पूर्णानन्द जैसे उद्भट व्यक्ति सिद्धान्त को स्वीकार कैसे करें! अन्त में पूर्णानन्द के गुरुदेव ने, जो उच्च कोटि के योगी थे, उन पर कृपा की। अपने योग-बल से उन्होंने पूर्णानन्द को दिव्य-चक्षु प्रदान किए, जिससे वे इन ‘चक्रों’ के स्वरूप को प्रत्यक्ष देखकर अनुभव करने में सफल-मनोरथ हुए।

बाद में पूर्णानन्द जी ने ‘षट्-चक्र-निरूपण’ नामक पुस्तक में स्वानुभूत ‘चक्रों’ का विवरण विस्तार-पूर्वक लिपि-बद्ध कर दिया, जिससे भविष्य में अन्य साधक भी ‘चक्र’-सम्बन्धी उतना ज्ञान तो प्राप्त कर ही सकें। ‘षट्-चक्र-निरूपण’ वास्तव में पूर्णानन्द जी के एक अन्य वृहत् ग्रन्थ ‘श्रीतत्त्व-चिन्तामणि’ का पूर्वांश है। ‘श्रीतत्त्व-चिन्तामणि’ आगम-शास्त्र का एक महत्त्व-पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ है।

जैसा कि सबको मालूम है, शरीर-स्थित उक्त ‘चक्र’ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। अतएव इनके स्वरूप का वर्णन उस प्रकार करना सम्भव नहीं है, जिस प्रकार शरीर या अस्थि-पञ्जर के किसी अन्य अङ्ग का किया जाता है। आज-कल के जो आधुनिक जिज्ञासु होते हैं, वे प्रायः इन ‘चक्रों’ के सम्बन्ध में बहुत

भ्रम-पूर्ण धारणा बनाए रहते हैं। वे इन्हें स्थूल शरीर में खोज निकालने की चेष्टा भी करते पाए जाते हैं। उन्हें नहीं मालूम कि ये 'षट्-चक्र' यद्यपि शारीरिक व्यापार से सम्बन्धित हैं तथापि ये स्थूल शरीर के स्थूल अङ्ग-रूप में नहीं हैं। ये तो वे सूक्ष्म केन्द्र हैं, जिन पर एकाग्रता-पूर्वक ध्यान लगाने का अभ्यास किया जाता है।

'योग' की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'ऐक्यं जीवात्मनोराहुः, योगं योग-विशारदाः।' इससे स्पष्ट है कि 'योग' का ठीक-ठीक अभ्यास करने से 'जीवात्मा' और 'परमात्मा' में ऐक्य हो जाता है। वेदों में कहा गया है कि जो कुछ है, सब ब्रह्म ही है — 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और यह भी कि परमात्मा अमृत, अनन्त एवं आनन्द-स्वरूप है। ऐसी दशा में पूछा जा सकता है कि 'जीवात्मा' भी तो उसी दिव्य परमात्मा का अंश-रूप है, फिर क्यों वह अज्ञान, दुःख और पर-वशता से जकड़ा हुआ है। उत्तर यह है कि 'ब्रह्म' की शक्ति — 'माया', अपनी 'आवरण' एवं 'विक्षेप' नामक शक्तियों के प्रभाव से इस द्वैतात्मक सृष्टि को आविर्भूत करती है और इसी से 'जीवात्मा' का सच्चा स्वरूप कञ्चुकित होकर उसमें अपूर्णता का भाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार जो 'जीवात्मा' वास्तव में पूर्ण और असीम है, अपूर्ण तथा सीमित भासित होती है और यह 'माया' की महिमा से होता है।

'षट्-चक्र-भेद' या 'कुण्डलिनी-योग' के द्वारा 'माया' की आवरण एवं विक्षेपात्मक बाधा को दूर कर साधक 'जीवात्मा' का सच्चा स्वरूप अनुभव करने में समर्थ होता है और क्रमशः वह 'परमात्मा' से ऐक्य लाभ करने में सफल-मनोरथ होता है। यह 'योग' परम दया-मय गुरु-देव की कृपा से व्यक्ति को सिद्ध होता है — उन गुरु-देव की कृपा से, जिनका स्थान 'सहस्रार' या 'सहस्र-दल-कमल' में है।

'कुण्डलिनी', जो 'मूलाधार' में सोती हुई शान्त भाव से पड़ी हुई है और जो अपने मुख से 'सुषुम्ना-नाडी' या 'ब्रह्म-द्वार' को बन्द किए रहती है, वह 'शब्द-ब्रह्म' है। समस्त मन्त्र उसी के स्वरूप हैं। समस्त वर्ण — मातृकाएँ, जो विचार-जगत् की सारी सृष्टि का सृजन करनेवाली हैं, उसी के स्वरूप हैं। इस प्रकार मन्त्र-साधना में 'कुण्डलिनी' का बड़ा महत्त्व है। मन्त्रों के ही बल से 'कुण्डलिनी' की सुप्तावस्था दूर की जाती है।

'कुण्डलिनी-योग' में कहे हुए अभ्यास द्वारा जिस शक्ति को जाग्रत् किया जाता है, वह स्वतः विशुद्ध विज्ञान है। उसे जाग्रत् कर जब मस्तिष्क के सर्वोच्च केन्द्र पर ले जाया जाता है, तो 'पशु-भाव-विमोचिका' सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसी दशा में 'कुण्डलिनी' परम शिव से सामरस्य-भाव में एकीभूत होती है और 'महा-कुण्डलिनी' कहलाती है।

'कुण्डलिनी-योग' समस्त प्रकार के योगों से उत्तम माना गया है और ठीक ही माना गया है। इसमें अन्य यौगिक विधियों की सभी अच्छी बातें सन्निहित हैं। 'कुण्डलिनी-योग' में जहाँ यह तत्त्व स्पष्टतः मान्य है कि मानव वास्तव में आत्मा है, वहाँ उसके भौतिक अस्तित्व की अवहेलना नहीं की गई है। कोई भी साधना हो, यदि उसमें इन दोनों मूल तत्त्वों पर ध्यान नहीं रखा गया है, तो वह अधूरी ही है। सोचने की बात है कि यदि शारीरिक और मानसिक विकास समान रूप से व्यक्ति का नहीं होता, तो उच्च-कोटि की आध्यात्मिक उन्नति उसके लिए सर्वथा सन्दिग्ध ही है।

'षट्-चक्र-भेद' या 'कुण्डलिनी-योग' की यह विशेषता है कि इसकी व्यापक साधना में शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों को समान रूप से नियन्त्रित और विकसित करते हुए परमार्थ को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। जब यह साधना ठीक-ठीक अभ्यास में लाई जाती है, तब साधक क्रमशः अनुभव करने लगता है कि उसका जीवन और उसके सारे क्रिया-कलाप, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक, जगज्जननी की दिव्य क्रिया-शीलता के ही अङ्ग हैं, जो उसके व्यक्तित्व द्वारा प्रतिभासित और सम्पादित होते दिखाई देते हैं। उसका शरीर जड़ या अदिव्य नहीं है। यह विश्व या इसके भोग-सुख तिरस्करणीय नहीं हैं और न इनसे छिपने-भागने की ही जरूरत है क्योंकि सभी वस्तुएँ 'चित्-शक्ति' से उत्पन्न होती हैं, सारे विश्व की उस एक दिव्य मां के स्वरूप हैं।

जब साधक उक्त अद्वैत एकात्मकता के भाव को प्राप्त कर चुकता है, सब प्रकार की द्वैतता से परे हो जाता है — स्वच्छ और अस्वच्छ की भेद-भावना उसमें नहीं रह जाती, तब वह 'वीर' की पदवी प्राप्त करता है। 'वीर' इसलिए क्योंकि वह 'पशु-भाव' या साधारण मानव-गत द्वित्व-भाव को जीत चुकता है। कहा भी है — "द्वैतान् पशून् विजानीयात्, अद्वैतो वीर उच्यते।"

संक्षेप में जैसा कि 'षट्-चक्र-भेद' के नाम से ही स्पष्ट है, 'कुण्डलिनी-योग-साधना' में 'षट्-चक्रों' का अत्यन्त महत्त्व है। बिना इनकी जानकारी प्राप्त किए, इस दिशा में साधक की गाड़ी आगे चलनी असम्भव है।

'मेरु-दण्ड' के निचले छोर से लेकर मस्तिष्क के सर्वोच्च बिन्दु 'सहस्र-दल-कमल' तक एक नाड़ी फैली हुई है। इसका नाम 'सुषुम्णा' है। यह सत्त्व, रज और तम — गुण-त्रयात्मिका है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान यह तेजस्विनी है। त्रि-गुण ही इसका मूल तत्त्व है। 'मूलाधार' में इसका वर्ण धस्तूर पुष्प के समान है। 'सुषुम्णा नाड़ी' के अन्दर एक और नाड़ी है, जिसका नाम है— 'वज्र-नाड़ी'। 'वज्र-नाड़ी' के भी भीतर 'चित्रिणी' नाम की एक अति सूक्ष्म नाड़ी है। 'चित्रिणी' के अन्दर जो खोखला मार्ग है, उसे 'ब्रह्म-नाड़ी' कहते हैं।

'सुषुम्णा - नाड़ी' की बाँई ओर 'मेरु-दण्ड' के बाहर 'इडा-नाड़ी' है। इसका वर्ण कुछ श्वेतत्व लिए हुए है, चन्द्र की तरह है। यह मानों मूर्तिमान अमृत ही है। दाई ओर 'मेरु-दण्ड' के बाहर 'पिङ्गला-नाड़ी' है, जो विष उगलती रहती है और सूर्य की तरह है।

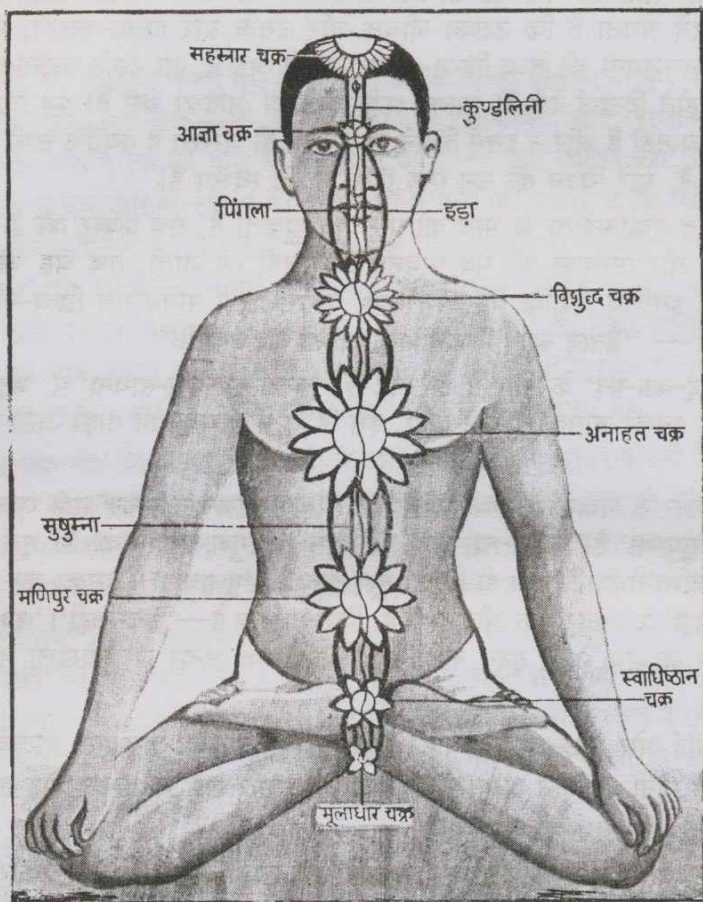
उक्त तीनों नाड़ियाँ 'मूलाधार' में परस्पर मिलकर 'त्रिवेणी' की रचना करती हैं। इसी प्रकार भौंहों की सीध में स्थित 'आज्ञा-चक्र' में ये पुनः परस्पर मिलकर 'त्रिवेणी' बनाती हैं और फिर अलग हो जाती हैं। पहलेवाली 'युक्त त्रिवेणी' कही जाती है और दूसरी आज्ञा-चक्रवाली 'मुक्त त्रिवेणी'।

अब चक्रों का क्रमशः वर्णन किया जाता है —

(१) मूलाधार-चक्र — जननेन्द्रिय के नीचे गुदा के ऊपर एक चार पंखुड़ियोंवाले कमल के समान यह 'चक्र' स्थित है। इसकी पंखुड़ियों में बिन्दु-युक्त 'व, श, ष, स,' — ये चार वर्ण सुनहले स्वरूप में अङ्कित हैं।

उक्त कमल की कर्णिका में धरा का एक त्रिकोण है, जो पीले रङ्ग का है और एक सुन्दर मण्डल है, जिसके चारों ओर आठ शूल हैं। मण्डल के अन्दर है— पृथ्वी-बीज 'लं'। इस बीज के चार भुजाएँ हैं और वह ऐरावत पर आसीन है। उक्त बीज के बिन्दु में शिशु-रूप ब्रह्मा स्थित हैं। ब्रह्मा चतुर्मुख हैं और चार भुजाओं में क्रमशः दण्ड, अंकुश, माला और अभय-मुद्रा धारण किए हुए हैं।

षट्चक्र और कुण्डलिनी



कमल की कर्णिका में देवी डाकिनी विराजमान हैं। ये रक्त-वर्ण की हैं और अपने चार हाथों में क्रमशः शूल, खट्वाङ्ग, खड्ग और चषक धारण किए हुए हैं। विद्युत् के समान त्रिकोण प्रकाशमान है। इस त्रिकोण को 'त्रैपुर' कहते हैं। 'त्रैपुर' के भीतर रक्त-वर्ण का कन्दर्प वायु और 'काम-बीज' (क्ती) स्थित है। त्रैपुर के ऊपर है— श्याम-वर्ण (हरी पत्ती के समान) का 'स्वयम्भू लिङ्ग'।

इसी के ऊपर तथा इसके चारों ओर से साढ़े-तीन घेरे देकर 'कुण्डलिनी' चमकते हुए सर्पाकार में कुण्डली मारे हुए स्थिर है। यही 'कुण्डलिनी' जगत् के समस्त जीवों को जीवन-दान देती है और मूल कमल में चमकते हुए प्रकाश-दीपों की पंक्तियों के समान भासमान होती है।

(२) स्वाधिष्ठान चक्र — जननेन्द्रिय के मूल स्थान पर सिन्दूर-वर्ण के छः पंखुड़ियोंवाले एक कमल के समान 'स्वाधिष्ठान चक्र' स्थित है। इसकी पंखुड़ियाँ विद्युत् रङ्ग की हैं और उन पर विन्दु-युक्त 'व, भ, म, य, र, ल' — ये छः वर्ण अङ्कित हैं। इस कमल की कर्णिका में जल का श्वेत मण्डल है, जिसके मध्य में अर्द्ध-चन्द्र है। इसके भीतर वरुण-बीज 'वं' है, जो मकर पर आसीन है और जिसके

हाथ में एक पाश है। विन्दु में गरुड़ासीन विष्णु हैं। उनके चारों हाथ १ शङ्ख, २ चक्र, ३ गदा और ४ पद्म धारण किए हैं। वे पीताम्बर पहने और गले में वैजयन्ती माला डाले तरुण-रूप में सुशोभित हैं। उनके वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न और कौस्तुभ-मणि विराजमान है।

कर्णिका में श्याम वर्ण की 'राकिनी शक्ति' भी है। इनके चारों हाथों में १ शूल, २ कमल, ३ डमरू और ४ टङ्क विराजमान है। इनके तीन नेत्र हैं, भयानक बाहर निकले हुए दाँत हैं और एक नासा-छिद्र से रक्त की धार बह रही है। ये श्वेत चावल को चाव से खानेवाली हैं।

(३) मणिपूर-चक्र — नाभि की सीध में दस पंखुड़ियोंवाले कमल के समान 'मणिपूर - चक्र' स्थित है। इसका रङ्ग विशाल बरसाती बादल जैसा है। इसकी पंखुड़ियों पर चमकते हुए नीले रङ्ग के स-विन्दु 'ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ' — ये दस वर्ण अङ्कित हैं। इस कमल की कर्णिका में अग्नि-मण्डल है। यह रक्त-वर्ण का है और त्रिभुजाकार है। इसके बाहर इसकी तीनों भुजाओं में तीन स्वस्तिक चिह्न हैं। त्रिभुज के भीतर लाल रङ्ग का अग्नि-बीज 'रं' मेष पर आसीन है। इसके चार हाथों में १ वज्र, २ शक्ति, ३ वर और ४ अभय की मुद्राएँ विराजमान हैं।

अग्नि-बीज के विन्दु में रक्त-वर्ण के रुद्र वृषभासीन स्थित हैं। ये रुद्र देखने में वयोवृद्ध हैं। भस्म रमाए होने के कारण इनकी त्वचा श्वेत जान पड़ती है। इस कमल की कर्णिका में एक लाल कमल पर त्रि-मुखी 'लाकिनी-शक्ति' शोभायमान हैं। उनके प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं और अपने चार हाथों में १ वज्र, २ शक्ति ३ वर और ४ अभय की मुद्राएँ धारण किए हुए हैं। बाहर निकले हुए उनके दाँत भीषण हैं। वे दाल के साथ पकाए गए चावलों और रक्त से भरे हुए ताजे मांस को चाव से खाती हैं। अपने भक्तों द्वारा प्राप्त वारुणी से वे मद-मत्त हैं।

(४) अनाहत चक्र — यह हृत्-कमल बन्धूक पुष्प के समान लाल रङ्ग का है। इसके बारह पंखुड़ियाँ हैं, जिन पर क्रमशः 'क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ' — ये १२ वर्ण स-विन्दु रूप में स्थित हैं। इसकी कर्णिका में धूम्र-वर्ण का षट्-भुजी वायु-मण्डल है और इसके ऊपर त्रिभुजाकार सूर्य-मण्डल है, जो इतना तेज-पूर्ण है, मानों दस हजार बिजलियाँ उसके भीतर चमक रही हों। इसके भीतर धूम्र-वर्ण का वायु-बीज 'यं' कृष्ण-सार (काले मृग) पर बैठा हुआ स्थित है। इसके चार हाथ हैं और अंकुश धारण किए हैं। बीज के विन्दु में हंस-वर्ण के त्रिनेत्र ईश स्थित हैं। उनके दोनों हाथों में वर और अभय मुद्राएँ शोभा पा रही हैं।

इस कमल की कर्णिका में सुनहले वर्ण की 'काकिनी शक्ति' विराजमान है। ये अपने चारों हाथों में १ पाश, २ कपाल, ३ वर और ४ अभय की मुद्राएँ धारण किए हुए हैं। इनका हृदय अमृत-मय होने से कोमल है। पीत वस्त्र, विभिन्न आभूषण और सूखी हड्डियों की माला ये पहने हैं। त्रिकोण के मध्य में स्वर्णिम बाण-लिङ्ग-रूप में शिव हैं। चमकते हुए सुवर्ण के समान उनका स्वरूप है और उनके मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्र एवं विन्दु शोभायमान हैं। उनके नीचे है — 'हंसः' की भाँति, 'जीवात्मा', उसी प्रकार जैसे वायु-रहित स्थान में स्थिर ज्योति होती है। इस कमल की कर्णिका के नीचे आठ पंखुड़ियों का एक लाल कमल है। यह ऊर्ध्व-मुख है। मानसिक पूजन में इसका ही इष्ट-देवता के आसन-रूप में ध्यान किया जाता है। इसमें 'कल्प-वृक्ष' और 'मणि-पीठ' स्थित हैं।

(५) **विशुद्ध चक्र** — कण्ठ के आधार-स्थान की सीध पर धूम्र जैसे भूरे रङ्ग की सोलह पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में यह 'चक्र' स्थित है। सोलहों स्वर, स-विन्दु रूप में लाल रङ्ग में, पंखुड़ियों पर क्रमशः अङ्कित हैं। इसकी कर्णिका में वृत्ताकार नभ-मण्डल है। यह पूर्ण-चन्द्र के समान श्वेत है। इसके अन्दर चन्द्र-मण्डल है और इसके ऊपर है— श्वेत वर्ण का व्योम-बीज 'हं', जो बर्फ के समान श्वेत हाथी पर आसीन है और जिसके चारों हाथों में पाश, अंकुश और वर-अभय की मुद्राएँ सुशोभित हैं।

विन्दु के भीतर अर्द्ध-नारीश्वर सदा-शिव विराज-मान हैं। ये त्रि-नेत्र, पञ्च-मुख और दश-भुज हैं, व्याघ्र-चर्म पहने हुए हैं। इनका शरीर गिरिजा के शरीर से युक्त है और एक वृषभ के ऊपर विशाल व्याघ्रासन पर आसीन हैं। इनका वामाङ्ग सुनहले वर्ण का है और दक्षाङ्ग हिम के समान श्वेत-वर्ण का। अपने हाथों में ये शूल, टङ्क (परशु), खड्ग, वज्र, दाहन (जलानेवाला अस्त्र), नागेन्द्र (वृहत् सर्प), घण्टा, अंकुश, पाश और अभय-मुद्रा धारण किए हैं। इनके सारे शरीर में भस्म रमी हुई है और गले में सर्पों की माला शोभित है। देखने में ये एक ऐसे पर्वत-समान हैं, जो एक साथ ही रुपहला और सुनहला हो! अधो-मुखी चन्द्र-कला, जो निरन्तर अमृत-स्त्राव करती रहती है, इनके मस्तक पर स्थित है।

कर्णिका में और चन्द्र-मण्डल के भीतर श्वेत-वर्णा, चतुर्भुजी, त्रि-नेत्रा, पञ्च-मुखी और पीत-वस्त्रा 'शाकिनी शक्ति' विराजमान हैं। अपने हाथों में ये धनुष, बाण, पाश और अंकुश धारण किए हुए हैं। ये अस्थि और धातु की देवता हैं और सारे पशु-समुदाय को उन्मत्त करती हैं।

(६) **आज्ञा-चक्र** — भूमध्य की सीध में स्थित दो पंखुड़ियोंवाले कमल के समान यह 'चक्र' स्थित है। 'षट्-चक्र-भेद' में यहाँ पहुँचने पर 'सहस्रार पद्म' पर आसीन महान् गुरु-देव की आज्ञा का ज्ञान प्राप्त होता है। इसकी दो पंखुड़ियों पर स-विन्दु 'हं' और 'क्षं' अङ्कित हैं। ये दोनों वर्ण भी श्वेत रङ्ग के हैं और इसके सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। कर्णिका पर श्वेत-वर्णा, षण्मुखी 'हाकिनी शक्ति' विराजमान हैं। इनका प्रत्येक मुख त्रि-नेत्र है। इनके छः हाथ वर-अभय मुद्राएँ, माला, कपाल, डमरु और पुस्तक धारण किए हुए हैं।

'हाकिनी शक्ति' के ऊपर एक त्रिकोण के भीतर इतर लिङ्ग है। यह विद्युत्-पंक्ति के समान उज्ज्वल है। वेदों का प्रथम बीज (प्रणव - ॐ) भी यहाँ है। इसके ऊपर, दूसरे त्रिकोण के अन्दर 'अन्तरात्मा' है, जो अग्नि-ज्योति के समान प्रकाशमान है। इसके चारों ओर एक प्रकाश के चारों ओर स्फुलिङ्ग हैं। इसका तेज इतना प्रखर है कि उसके प्रभाव से मूल से लेकर ब्रह्म-रन्ध्र तक जो कुछ है, वह सब स्पष्ट रूप से दृष्टि-गत होता है। इसके भी ऊपर 'मनस्' है और 'मनस्-चक्र' के ऊपर है — 'सोम-चक्र'। इसके भीतर 'हंसः' बीज है। इसके भीतर सर्व-व्यापी 'पर-शिव' हैं, जिनके बाँई ओर मूर्तिमान् अमृतानन्द-मयी 'सिद्ध-काली' शोभायमान हैं।

उक्त छहों चक्रों का भेदन करने पर 'सहस्रार' की प्राप्ति होती है, जो इस प्रकार है —

'सहस्रार' — यह हजार पंखुड़ियोंवाले कमल के रूप में है। 'आज्ञा-चक्र' के ऊपर 'महा-नाद' का स्वरूप है। यहाँ वायु का अस्तित्व नहीं रह जाता और विशुद्ध बुद्धि का स्वरूप व्यक्त हो उठता है। इन सबसे ऊपर परम व्योम है, जिसमें 'शङ्खिनी नाड़ी' स्थित है। 'विसर्ग' के नीचे श्वेत-वर्ण का हजार

पंखुड़ियोंवाला कमल है। यह कमल अधो-मुख है। उदय होते हुए सूर्य की आभा से यह सारा कमल रञ्जित है। इसकी पंखुड़ियों की बीस-बीस बार परिक्रमा करते हुए 'अ' से 'क्ष' तक के पचास वर्ण स्थित हैं। ये वर्ण भी श्वेत आभा के हैं।

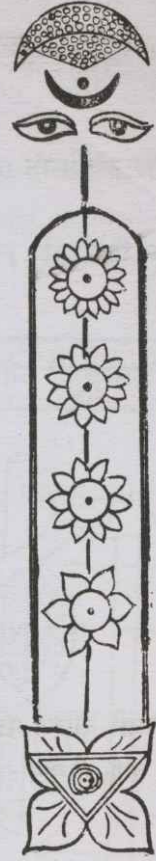
कमल के भीतर पूर्ण-चन्द्र है, जिसमें से अमृत के समान आर्द्र और शीतल किरणें विकीर्ण होती रहती हैं। इसके भीतर निरन्तर विद्युत्-वत् प्रकाशमान 'अ-कथादि त्रिकोण' है और इसके भी भीतर महा-शून्य भासमान है, जो कि विलक्षण विन्दु है। इस विन्दु तक महान् प्रयास-द्वारा ही पहुँच हो सकती है। देव-गण और कौल साधक इसकी नित्य पूजा किया करते हैं। यह 'मोक्ष' का मुख्य केन्द्र है।

यहीं चन्द्र की रक्त-वर्णा विद्युत्-आभावाली सोलहवीं कला— अमा - कला के साथ विशुद्ध निर्वाण-कला की, अमा-कला के साथ विशुद्ध निर्वाण-कला की अभिव्यक्ति होती है। उस 'निर्वाण-कला' की, जो एक केश के हजारवें भाग के समान अति सूक्ष्म है। इस कमल की कर्णिका में 'परम-हंसः' है और इसके ऊपर सदा आनन्द-मय श्वेत द्वादश-दल-कमलासीन साक्षात् परम शिव-स्वरूप गुरु-देव विराजमान हैं। वहीं परमात्मा और ब्रह्म हैं। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर करता है, उसी प्रकार वे जगत् के मोह और अज्ञान को दूर करते हैं और विशुद्ध बुद्धिवाले योगियों को वह ज्ञान प्रदान करते हैं, जिससे वे जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य-भाव को अनुभव करने में समर्थ होते हैं।

'निर्वाण-कला' के नीचे 'निबोधिका' नामक अग्रि है, जो अव्यक्त-नाद का एक स्वरूप है। इसके ऊपर 'निर्वाण-कला' के भीतर 'परा-विन्दु' है, जो शिव-शक्ति-मय है और जिसमें सृष्टि के सभी प्रमुख दैवत स्थित हैं।

शैव इसे शिव का, वैष्णव परम-पुरुष या विष्णु का और अन्य लोग हरि-हर का स्थान बतलाते हैं। महा-शक्ति के उपासक इसे 'महा-देवी का स्थान' मानते हैं और अन्य महर्षि इसे 'प्रकृति-पुरुष-मिलन' का स्थान बताते हैं।

ऊपर 'अमा-कला' का उल्लेख किया गया है। यही 'महा-कुण्डलिनी' और 'परम-शिव' के सदानन्द-मय ऐक्य से उत्पन्न अमृत-स्त्राव को ग्रहण करती है। यहीं 'शिव-पद' दृष्टि-गत होता है। वह 'शिव-पद', जो ब्रह्म का स्थान है — माया से स्वतन्त्र है और जिसे केवल विशुद्ध ज्ञान-द्वारा ही योगी प्राप्त कर सकते हैं। यही नित्यानन्द का स्थान है और इसी में सृष्टि का लय होता है।



॥श्रीदत्त षट्-चक्र स्तोत्रम्॥



दिगम्बरं भस्म-विलेपिताङ्गं, बोधात्मकं मुक्ति-करं प्रसन्नम्।
निर्मानसं श्याम-तनुं भजेऽहं, दत्तात्रेयं ब्रह्म-समाधि-युक्तम्॥

मूलाधारे वारिज-पत्रे स-चतुष्के, वं-शं-षं-सं-वर्ण-विशालैः सु-विशालैः।

रक्तं वर्णं श्रीगण - नाथं भगवन्तं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु - मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥१

स्वाधिष्ठाने षड्-दल-पत्रे तनु-लिङ्गे, बालां तावद्-वर्ण-विशालैः सु-विशालैः।

पीतं वर्णं वाक् - पति - रूपं ग्रहणातं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु-मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥२

नाभि-पत्रे पद्म-दशान्ते ठ-प-वर्णे, लक्ष्मी-कान्तं गरुडारूढं नर-वीरम्।

नीलं वर्णं निर्गुण-रूपं निगमाख्यं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु-मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥३

हृत् - पद्मान्ते द्वादश-पत्रे क-ठ-वर्णे, शम्भुं शेषं हंस-विशेषं समयं तम्।

सर्ग-स्थित्यं तान् कुर्वन्तं शिव-कान्तिं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु-मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥४

चक्र-स्थाने चक्र-विशुद्धे कुसुमान्ते, चन्द्राकारे षोडश-पत्रे स्वर - वर्णे।

मायाधीशं जीव-शिवं तं निज-मूर्तिं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु-मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥५

आज्ञा-चक्रे भ्रुकुटि-स्थाने द्वि-दलान्ते, हं-क्षं-बीजं ज्ञान-निधिं तं गुरु-मूर्तिम्।

विद्युद् - वर्णं ज्ञान - मयं तं निटिलाक्षं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु-मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥६

शान्ताकारं शेष-शयनं सुर-वन्धं, कान्ता-नाथं कोमल-गात्रं कमलाक्षम्।

चिन्ता-रत्ने चिद्-धन-रूपं द्विज-राजं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु-मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥७

ब्रह्मानन्दं ब्रह्म-मुकुन्दं भगवन्तं, सत्यं ज्ञानं सत्यमनन्तं भग-रूपम्।

पूर्ण-ब्रह्मानन्द-मयं तं गुरु-मूर्तिं, दत्तात्रेयं श्रीगुरु-मूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥८

षट्-चक्रों का वर्णन

* 'राज-गुरु कुल-मार्तण्ड' पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

नाड़ियों का स्थिति-क्रम

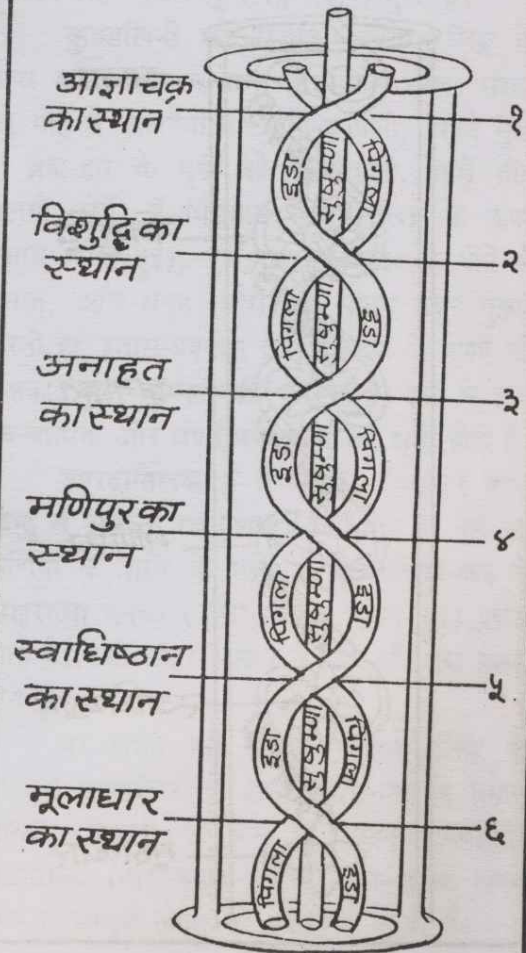
मनुष्य के शरीर में 'मूलाधार' आदि चक्रों की स्थिति-ज्ञान के लिए 'इडा,' 'पिङ्गला' और 'सुषुम्णा' आदि नाड़ियों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। मानव शरीर के पृष्ठ भाग में मेरु-दण्ड (रीढ़ की हड्डी) है, उसके वाम भाग में बाहर की ओर चन्द्र-स्वरूपा 'इडा' नाड़ी है और दाहिनी ओर सूर्य-रूप 'पिङ्गला' नाड़ी। 'इडा' को शक्ति और 'पिङ्गला' को पुरुष भी कहते हैं।

मेरु-दण्ड के मध्य भाग में 'इडा' और 'पिङ्गला' के बीच गुद-स्थान से दो अंगुल ऊपर और लिङ्ग से दो अंगुल नीचे चार अंगुल के विस्तारवाला पक्षी के अण्डे के समान मूल 'कन्द' है। उक्त 'कन्द' के मध्य में ऊपर की ओर उठी हुई शिर-पर्यन्त स्थित धतूरे के फूल के समान चन्द्र, सूर्य और अग्नि-स्वरूपा 'वज्रिणी' तथा 'चित्रिणी' नाड़ियों से युक्त, त्रिगुणात्मिका 'सुषुम्णा' नाड़ी सुशोभित है। 'वज्रिणी नाड़ी' सुषुम्णा के मध्य देश को दीप्त करती हुई कन्द से दो अंगुल ऊपर लिङ्ग-स्थान से शिर-पर्यन्त जाती है।

'वज्रिणी नाड़ी' के मध्य में 'चित्रिणी नाड़ी' है। यह नाड़ी लूता (मकड़ी) तन्तु के समान अत्यन्त सूक्ष्म प्रणव (ॐ) के प्रकाश से युक्त, मेरु-दण्ड के मध्य भाग में स्थित 'सुषुम्णा' और 'वज्रिणी' नाड़ियों के भीतर स्थित मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामवाले कमलों (चक्रों) का भेदन कर उक्त छहों कमलों से

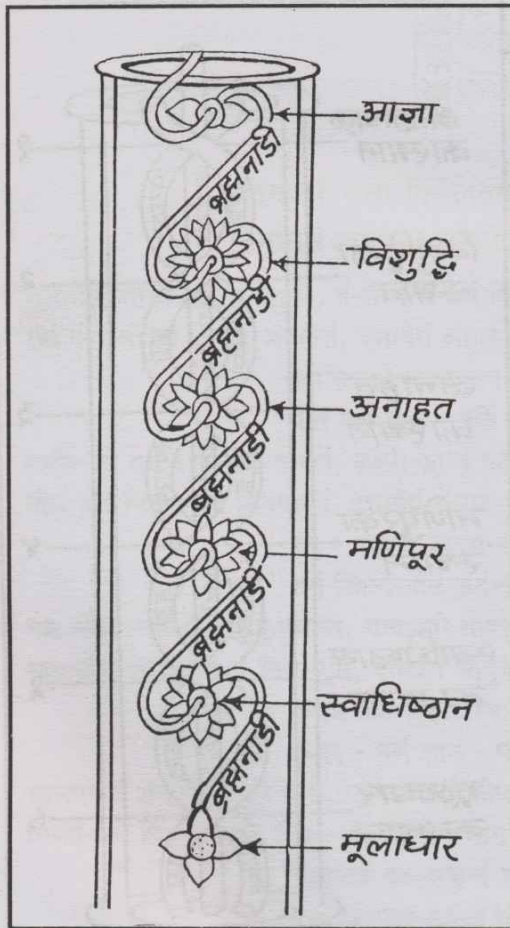
गुथी हुई है अर्थात् उक्त कमल 'चित्रिणी नाड़ी' में ग्रथित-से हैं।

'इडा,' 'पिङ्गला' और 'सुषुम्णा'



'चित्रिणी' नाड़ी शुक्ल-वर्णा, चन्द्र-स्वरूपा और सत्त्व-गुणात्मिका है, 'वज्रिणी' सूर्य-रूपा, रक्त-वर्णा रजो-गुणात्मिका तथा 'सुषुम्णा' अग्नि-रूपा, तमो-गुण-मयी है।

चित्रिणी नाड़ी के मध्य में मूलाधार-स्थित स्वयम्भू-लिङ्ग के छिद्र से सहस्र-दल-कमल-स्थित शिव-पर्यन्त जानेवाली, बिजली के समान प्रकाश से युक्त, अत्यन्त सूक्ष्म, सत्त्व-रज-तम गुणोंवाली त्रिगुणात्मिका 'ब्रह्म-नाड़ी' है।



'ब्रह्म-नाड़ी' के मुख में 'ब्रह्म-द्वार' है, जिसमें शिव-शक्ति-सामरस्य (शिव और शक्ति के परस्पर संयोग) से उत्पन्न अमृत का प्रवाह फैलता है। इस ब्रह्म-द्वार-रूप स्थान से सहस्रार-स्थित शिव-शक्ति द्वारा उद्भूत अमृत का पान किया जाता है। इस ब्रह्म-द्वार की ही योगी लोग 'सुषुम्णा नाड़ी' का मुख बतलाते हैं।

१. मूलाधार : प्रथम चक्र

मानव शरीर में स्थित चक्रों में नीचे से ऊपर की ओर यह प्रथम चक्र है। शेष सब चक्रों (कमलों) का मूल आधार (स्थिति का मूल कारण) होने से इस चक्र की 'मूलाधार' संज्ञा हुई, अर्थात् सब चक्रों के मूल (जड़) में यह चक्र है। इसी के ऊपर शेष अन्य चक्र स्थित हैं।

यह मूलाधार पद्म पायु (गुदा) और लिङ्ग के बीच में सुषुम्णा नाड़ी से वेष्टित अधो-मुख है। इसके रक्त-वर्ण (लाल रङ्ग) के चार पत्ते हैं। उनमें पूर्व से दक्षिण की ओर सुवर्ण वर्ण (सुनहरे रङ्ग) के 'व, श, ष, स'—ये चार अक्षर हैं। इस मूलाधार पद्म में एक चतुष्कोण (चौकोर) मण्डल है और इसका देवता 'पृथ्वी' है। इस मण्डल की आठ दिशाओं में अष्ट शूल हैं और मध्य में पीत-वर्ण ल-कार (लं) पृथ्वी-बीज है।

निर्वाण-तन्त्र कहता है कि चतुर्दल मूलाधार पद्म अधो-मुख है तथा पद्म के मध्य बीज-कोष में पृथ्वी-चक्र है और उसके चारों ओर वलयकार सात समुद्र स्थित हैं। पृथिवी के मध्य-देश में चतुष्कोण मनोहर जम्बू द्वीप है। उसके मध्य में त्रिकोणात्मक योनि है। उसका अधिदेवता 'काम' है, पृथिवी-बीज लकार (लं) इन्द्र-रूप है, जिसकी चार भुजाएँ हैं तथा वाहन 'ऐरावत' हाथी है।

पृथिवी-वीज के भीतर नाद के ऊपर प्रातः कालीन सूर्य के समान भास्कर चतुर्बाहु **चतुरानन ब्रह्मा** विराजमान हैं। लिङ्ग के वाम-भाग में ऐन्द्र-वीज है, जिसमें नाद के ऊपर सुन्दर प्रसिद्ध '**ब्रह्म-सदन**' है। यहीं सृष्टि-कर्ता **प्रजापति ब्रह्मा** निवास करते हैं। नाद के ऊपर **ब्रह्म-सदन** की स्थिति दिखाने से नाद के ऊर्ध्व-बिन्दु में **ब्रह्म** की स्थिति समझनी चाहिए।

'**लिङ्गस्य वाम-देशके**' (लिङ्ग के वाम भाग में)—यह '**निर्वाण तन्त्र**' का वचन '**श्रीतत्त्व-चिन्तामणि**'-कार के सम्मत नहीं है, यतः इन्होंने मूल में यह बात नहीं लिखी है। तन्त्रों में इस सम्बन्ध कुछ मतभेद हैं।

'**चतुर्वक्त्रं हंस-पृष्ठे, ब्रह्माणं विद्धि पार्वति!**'

अर्थात् ब्रह्मा जो हंस-पृष्ठ पर स्थित हैं—'**षट्-चक्र-टीका**' में उद्धृत इस '**भूत-सिद्धि-तन्त्र**' के वचन के अनुसार **ब्रह्मा जी की स्थिति हंस-पृष्ठ पर ही समझनी चाहिए।**

डाकिनी-शक्ति—मूलाधार पद्म में चतुर्भुजी काञ्चन-वर्णा, रक्त-नेत्रवाली '**डाकिनी**' देवी साधक को तत्त्व-ज्ञान प्रदान करती हैं। **ब्रह्मा जी की शक्ति** होने के कारण इनकी भी **चार भुजाएँ हैं।**

'**मूलाधार पद्म**' के भीतर त्रिकोण में '**कन्दर्प**' नामक वायु '**वज्राख्या मेढू-देशाच्छिरसि परिगता**'—इत्यादि पद्म से निर्दिष्ट **वज्रा नाड़ी** के मुख-प्रदेश में स्थित कर्णिका के मध्य में योनि के आकारवाला '**त्रिकोण**' है। उसके भीतर **काम-वायु** अर्थात् **कन्दर्प** नाम का वायु और **क्लीं** यह **काम-वीज**—रक्त-वर्ण तथा सूर्य के समान चमकनेवाला सुशोभित है।

'**शाक्तानन्द-तरङ्गिणी**' में लिखा है कि '**मूलाधार**' में **कन्द** के मध्य में अत्यन्त सुन्दर

काम-वीज है। उक्त त्रिकोणात्मक योनि की तीन रेखाएँ **इच्छा, ज्ञान और क्रियात्मिका** हैं। इस योनि (त्रिकोण) में **काम-वीज की स्थिति से 'काम' की स्थिति समझी जाती है।**

स्वयम्भू-लिङ्ग इसी योन्याकार त्रिकोण में सुवर्ण-सम कान्तिवाला, योगी तथा ज्ञानी लोगों के चिन्तन से प्रकाशित होनेवाला, पूर्ण चन्द्र-मण्डल के समान प्रकाशवती **कुण्डलिनी** के साथ विलासकारी **शम्भु (स्वयम्भू-लिङ्ग)** विद्यमान है। सारांश यह है कि आधार-त्रिकोण के मध्य में नव-किसलय के आकारवाला '**स्वयम्भू-लिङ्ग**' अधो-मुख है।

कुण्डलिनी की स्थिति—स्वयम्भू-लिङ्ग के ऊपर कमल-नाल के तन्तु के समान सूक्ष्म, संसार को मोह में डालनेवाली, माया-रूपिणी, अपने मुख से ब्रह्म-द्वार के मुख को ढँकनेवाली, साढ़े तीन वलयों (घेरों) में विद्यमान स्वयम्भू-लिङ्ग के ऊपर प्रसुप्त (सोई हुई), पुष्प-रस (मकरन्द) के पीने से उन्मत्त, अलि-समूह (भौरों) के समान मधुर गुञ्जार करती हुई श्वास-प्रश्वास द्वारा प्राणियों के प्राणों की रक्षिका '**कुल-कुण्डलिनी**' शोभित है। इसी के द्वारा ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक शब्द की सृष्टि होती है।

शारदातिलक में लिखा है—विद्यमान **पर-विन्दु से अव्यक्त रव (शब्द)** पैदा होता है, वही रव प्राणियों के शरीर के मध्य में **कुण्डलिनी-रूप में अक्षरात्मा** बनकर (अक्षर-स्वरूप धारण कर) प्रकट होता है। उसी अक्षर-स्वरूप से गद्य और पद्य प्रकट होते हैं।

पर-शक्ति की स्थिति—स्वयम्भू-लिङ्ग के मध्य में **कुण्डलिनी** के ऊपर विद्युत्-प्रभा के समान भास्वर (बिजली की प्रभा के समान चमकीली) नादात्मिका (नाद-रूपा) परमेश्वरी **परा-शक्ति** अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करती है।

मूलाधार में कुण्डलिनी के ध्यान का फल—
मूलाधार-चक्र के भीतर कोटि सूर्यों के समान प्रकाशमान कुल-कुण्डलिनी का ध्यान कर साधक वागीश्वर बन जाता है तथा रोग-रहित होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—तीनों देवों तथा अन्य देवताओं और विद्वानों की सेवा करता है।

परा-शक्ति को नाद-रूपा बताया गया है। शास्त्रानुसार नाद-रूप ०।० इस प्रकार है अर्थात् दो बिन्दु और उनके मध्य में एक रेखा।

२. स्वाधिष्ठान : द्वितीय चक्र

स्व=पर-लिङ्ग का अधिष्ठान=स्थान। जिस स्थान पर पर-लिङ्ग स्थित है, उस चक्र का नाम 'स्वाधिष्ठान' है।

मूलाधार के ऊपर लिङ्ग के मूल-स्थान में सुषुम्णा नाड़ी के मध्य-देश में सिन्दूर रङ्ग का षड्-दल-कमल है। दलों में यथा-क्रम 'बं, भं, मं, यं, रं, लं'—ये छः बीजाक्षर विद्युद्-वर्ण के हैं।

स्वाधिष्ठान कमल की कर्णिका में शुक्ल वर्ण अर्ध-चन्द्र के समान कमल के आकार का जल-मण्डल है। उसमें शरत्-कालीन चन्द्रमा के समान शुभ्र मकर-वाहन वरुण वीज 'वं' है। वीज की स्थिति से उसके देवता की भी उपस्थिति मानी जाती है।

वरुण-वीज के मध्य में नील-जलद-कान्ति अर्थात् श्याम-वर्ण के पीताम्बर-धारी, कौस्तुभ मणि से सुशोभित, चतुर्भुज श्रीविष्णु भगवान् सुशोभित हैं।

राकिणी—स्वाधिष्ठान में विविध आभरणों से विभूषिता, नील-कमल जैसी श्याम-वर्णा, दिव्य वस्त्रों से सुसज्जिता व विविध आयुधों से विभूषिता राकिणी शक्ति विराजमान है।

किन्तु 'शाक्तानन्द-तरङ्गिणी' में विशुद्धि में डाकिनी, अनाहत में राकिणी, मणिपूर में लाकिनी,

स्वाधिष्ठान में काकिनी और मूलाधार में शाकिनी शक्ति बताई गई है।

स्वाधिष्ठान में कुण्डलिनी के ध्यान का फल—स्वाधिष्ठान चक्र में मन को स्थिर करने से षड्-रिपु—काम-क्रोधादि नष्ट हो जाते हैं। माया-मोहादि अन्धकार दूर होकर हृदय में ज्ञान-रूपी सूर्य उदय हो जाता है तथा साधक अमृत-मयी वाणी से युक्त हो जाता है।

३. मणिपूर : तृतीय चक्र

'स्वाधिष्ठान' के ऊपर नाभि-मूल में घने बादल के समान श्याम वर्ण का दश-दल कमल है। उसके दलों में लाल प्रभावाले 'डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं'—ये दश बीजाक्षर हैं। कमल की कर्णिका में लाल सूर्य के समान उज्ज्वल त्रिकोणाकार अग्नि-मण्डल है, जो स्वस्तिक-चिह्नाकार के तीन दरवाजों से युक्त है।

'शाक्तानन्द-तरङ्गिणी' में यह कमल रक्त-वर्ण का और 'गन्धर्व तन्त्र' में स्वर्ण वर्ण का बताया है। अतः अपने गुरु-देव से पूछकर ध्यान के लिए किसी एक रङ्ग को स्वीकार कर लेना चाहिए।

त्रिकोणात्मक अग्नि-मण्डल में मेष-वाहन, रक्त-वर्ण, चतुर्भुज अग्नि-वीज 'रं' का ध्यान करे। अग्नि-वीज से अग्नि-देव का भी ग्रहण किया जाता है।

काकिनी-शक्ति—मणिपूर की कर्णिका में सकल लोक-कल्याण-कारिणी, पीत-वस्त्र और अलङ्कारों से अलंकृता, चतुर्भुजी, श्याम-वर्णा रुद्र-शक्ति काकिनी सुशोभित है।

मणिपूर में ध्यान का फल—नाभि-स्थान में इस चक्र के ध्यान से पालन और संहार करने की शक्ति मिलती है तथा भगवती वाग्वादिनी (सरस्वती) मुख में सदा निवास करती हैं अर्थात् साधक सब प्रकार से समर्थ होता है। *

षट्-चक्रों का वर्णन

* 'राज-गुरु कुल-मार्तण्ड' पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

४. अनाहत : चतुर्थ चक्र

जिस चक्र में शब्द-ब्रह्म-मय-ध्वनि बिना चोट किए अपने आप सुनाई देती है, उसे 'अनाहत' पद्म या चक्र कहते हैं।

मणिपूर के ऊर्ध्व अर्थात् हृदय-देश में बन्धूक पुष्प के समान लाल रङ्ग का, 'क' से 'ठ' तक के बारह रक्त-वर्ण अक्षरों से युक्त, मनोऽभिलाष से भी अधिक फल देनेवाला चौथा 'अनाहत' कमल है। इसकी कर्णिका में छः कोणोंवाला, धूम्र-वर्ण, 'वायु' का मण्डल है और उसके मध्य में आनन्द-मय चतुर्भुज कृष्णसार मृग पर सवार वायु-वीज 'यं' है। वायु-वीज से वायु-देव की ओर सङ्केत है।

वायु-वीज के मध्य में तीनों लोक के कल्याण के लिए अभय और वर मुद्राएँ धारण किए शुक्ल-वर्ण, 'ईश्वर'-नामक शिव का ध्यान करना चाहिए।

लाकिनी शक्ति—ईश्वर के वाम भाग में पाश, कपाल, वर और अभय-धारिणी, साधक-हित-कारिणी, चतुर्भुजी, त्रिनयना, पीत-वर्ण के अनेक अलङ्कारों से अलंकृता, सहस्रार से निर्गलित अमृत-रस के पान से प्रसन्न कङ्काल-मालिनी लाकिनी-शक्ति सुशोभित है।

वायु-वीज 'यं' के नीचे बिजली के समान प्रकाशवाली, कोमल, त्रिकोणाकार शक्ति है, जिसके दक्ष-भाग में सुवर्ण के समान कान्तिमान बाण-लिङ्ग है। इसके ऊपर शिर में अर्ध-चन्द्राकार विन्दु है, जो अत्यन्त शोभा-शाली है।

अनाहत के ध्यान का फल—मन की अभिलाषाओं के पूर्ण करने में कल्प-वृक्ष के समान, दीप की लौ के समान जीवात्मा भगवान् शिव का निवास-स्थान, सूर्य-मण्डल की अरुण-वर्ण किरणों के सम्पर्क से खिले हुए केशरों की शोभा से युक्त अनाहत पद्म के ध्यान से साधक देव-गुरु बृहस्पति के समान सब शास्त्रों का जाननेवाला, वाक्-पटु, सृष्टि-स्थिति और संहार करने में समर्थ, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, काव्यामृत-रस के आस्वादन में निपुण, नारायण के समान योगी, पर-काया-प्रवेश करने की योग्यता को धारण करनेवाला होता है।

५. विशुद्ध : पञ्चम चक्र

'अनाहत पद्म' के ऊपर कण्ठ देश में धूम्र-वर्ण षोडश पत्रोंवाले 'विशुद्ध'-नामक कमल के दलों पर 'अ' से लेकर 'अः' तक के षोडश स्वर रक्त-वर्ण में प्रदीप्त होते हैं। इस कमल की कर्णिका में गोलाकार पूर्ण-चन्द्रमा के समान भास्वर शुक्ल-वर्ण नभो-मण्डल है।

इस पद्म का नाम 'विशुद्ध' इसलिए पड़ा कि यहाँ पर जीवात्मा शुद्धता को प्राप्त होता है।

गगन-मण्डल में सफेद रङ्ग के हाथी के ऊपर विराजमान, शुक्लाम्बर-धारी, पाश, अभय, अंकुश और वर धारण किए हुए, चार भुजाओं से सुशोभित नभो वीज है। इस आकाश-वीज के अङ्क में शार्दूल चर्म धारण करनेवाले पञ्च-मुख त्रिनेत्र (प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्रवाले) अर्द्ध-नारीश्वर भगवान् शिव विराजमान हैं। नभो-वीज से नभ की भी उपस्थिति

प्रतीत होती है।

शाकिनी शक्ति—विशुद्ध पद्म की कर्णिका में शुक्ल-वर्णा, शर, चाप, पाश और अंकुश—इन चार आयुओं को अपने चार करों में धारण करती हुई पीत-वस्त्र-परिवृता **शाकिनी शक्ति** है।

दूसरा क्रम—'निर्वाण तन्त्र', अष्टम पटल में बताया है कि **वीज-कोष** के बाहर **चन्द्र-मण्डल**, और भीतर **षट्-कोण चक्र** है, जिसके मध्य में **वृत्त** है। **वृत्त** के भीतर सिंहासन पर **अर्द्ध-नारीश्वर सदाशिव** हैं।

विशुद्ध चक्र के ध्यान का फल—साधक कवि, वाग्मी, ज्ञानी और त्रिलोक-दर्शी तथा लोगों का कल्याण करनेवाला, रोग और शोक से रहित होकर चिर-जीवी बनता है।

६. आज्ञा : षष्ठ चक्र

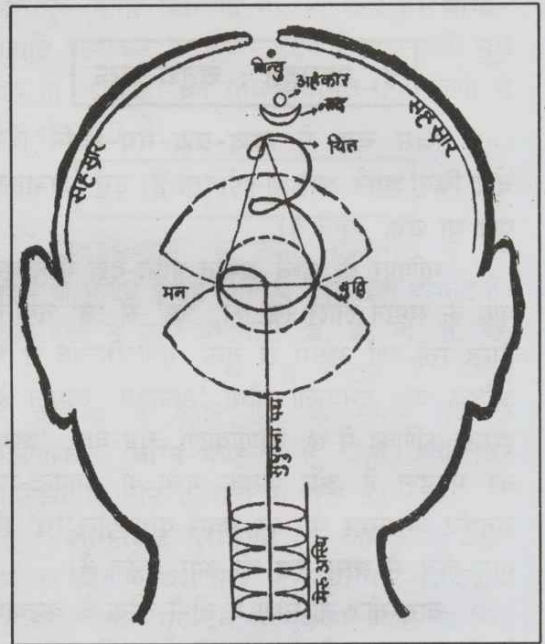
तालु और कण्ठ से भौहों के बीच में चन्द्र के समान शुक्ल-वर्ण '**आज्ञा**' नामक चक्र है। इसके दो दल हैं, जिनमें '**हं**' और '**क्ष**'—ये दो वर्ण हैं और इनका रङ्ग भी श्वेत है।

इस चक्र में **गुरुदेव की आज्ञा** का संक्रमण होता है अर्थात् गुरुदेव की आज्ञा से शुद्ध **ब्रह्म-ज्ञान** की उपलब्धि होती है।

हाकिनी-शक्ति—आज्ञा-चक्र की कर्णिका में चन्द्रमा के सदृश श्वेत-वर्णा, षडानना '**हाकिनी**' शक्ति है। इसके छः हाथ हैं। अन्य मत से चतुर्भुजी है। इसके हाथों में १. विद्या, २. वर, ३. अभय, ४. कपाल, ५. डमरु और ६. जप-माला हैं।

'**आज्ञा पद्म**' की कर्णिका में इन्द्रियों से परे सूक्ष्म रूप '**मन**' का निवास है। कर्णिका के भीतर एक त्रिकोण है। उसमें शुद्ध स्फटिक के समान '**इतर**' नाम का '**शिव-लिङ्ग**' है, जिसके ऊर्ध्व

भाग में बिजली के समान चमकीला **शक्ति-त्रिकोण** है। इस त्रिकोण में साधक चित्त स्थिर कर **ब्रह्म-नाड़ी** के ज्ञान को करानेवाले वेदों के आदि-वीज **प्रणव (ॐ)** का चिन्तन करता है।



यहाँ यद्यपि '**चित्रिणी नाड़ी**' में '**प्रणव**' की स्थिति मानी है, तथापि '**आज्ञा-चक्र**' में स्थित '**प्रणव**' से '**चित्रिणी नाड़ी**' के भीतर स्थित '**ब्रह्म-नाड़ी**' से भी प्रणव संयुक्त है, ऐसा मान लेना उपयुक्त है। यतः '**आज्ञा-पद्म**' की कर्णिका में '**मन**' है और कर्णिका के भीतर त्रिकोण में '**इतर**' नाम का शिव-लिङ्ग है, जिसके ऊपर त्रिकोण में बिजली के पुञ्ज के समान कान्तिवाला प्रणव (**ॐ-कार**) है।

अ-कार और **उ-कार** का गुण-सन्धि द्वारा सम्मिलित रूप प्रकाश-स्वरूप **ओ-कार** है। इस **ओ-कार** के ऊपर अर्द्ध-चन्द्राकार चिह्न (◌) है, जिसके ऊपर '**बिन्दु**'-रूप **म-कार** है। '**बिन्दु**'-रूप

म-कार के पूर्व 'नाद' है। अर्द्ध-चन्द्र, नाद और बिन्दु अत्यन्त श्वेत हैं। इस प्रकार 'प्रणव' दीप-शिखा के समान उज्ज्वल श्वेत-वर्ण है।

आज्ञा-चक्र के ध्यान का फल—आज्ञा-चक्र में ध्यान करनेवाला साधक पर-काय-प्रवेशकारी, सर्वज्ञ, सर्व-दर्शी, मनसा, वाचा और कर्मणा परोपकारी, अद्वैत आचारवाला, परम-सिद्धि-सम्पन्न, दीर्घायु तथा तीनों लोकों का उत्पादक, पालक और संहारक होता है।

आज्ञा-चक्र-स्थित प्रणव के ध्यान में मन लगाने पर श्री गुरुदेव की सेवा से प्राप्त, चित्त स्थिर करनेवाली तथा विषयों का नाश करनेवाली 'योनि-मुद्रा' अथवा 'खेचरी'-मुद्रा द्वारा निरन्तर 'प्रणव का ध्यान' करने से साधक आग की चिनगारियों को देखता है। पुनः अभ्यास की दृढ़ता से पद्म के मध्य में स्थित त्रिकोण और अनन्तर प्रणव की रचना करनेवाले अक्षरों का भी दर्शन करता है।

जिस प्रकार सहस्र-दल-कमल में अग्नि, चन्द्र और सूर्य-मण्डल में परम-शिव निवास करते हैं, एवमेव आज्ञा-चक्र की कर्णिका के मध्य में स्थित अग्नि, चन्द्र और सूर्य-मण्डल में श्रीपरम-शिव का साक्षात्कार होता है। यहीं वे सर्व-प्रपञ्चों के सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्यों को अपने ऐश्वर्य से निपटाते रहते हैं। ये परम-शिव ही अव्यय, साक्षी और द्रष्टा हैं। इस विषय में यह ध्यान देने की बात है कि सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्यकारिणी केवल शक्ति ही है। परम शिव अपने से अभिन्न शक्ति द्वारा किए गए प्रपञ्च, सृष्टि आदि को कूटस्थ रूप से देखते भर रहते हैं। 'साक्षी'-शब्द से यही बात सूचित होती है।

योगीन्द्र साधक प्राण त्यागने के समय 'मुझे ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त होगा'—इस आशा से प्रसन्न

होकर निरन्तर, आनन्द-मय रमणीय आज्ञा-चक्र में प्राणों को चढ़ाकर योग की विधि से प्राणों का लय कर परं-पुरुष में प्रविष्ट हो जाने से निर्वाण मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

महा-नाद से वायु की उत्पत्ति मानी गई है। अतः वायु की उत्पत्ति के कारण महा-नाद में ही वायु का लय होता है। योगाभ्यास से चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर साधक शिव-शक्ति-मय शान्त शुद्धि-बुद्धि-प्रकाश महा-नाद को देखता है, उसी समय सर्वदा के लिए उसे वाक्-सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

'शारदातिलक' के प्रथम पटल में लिखा है कि 'विन्दु'—शिव है, 'वीज'—शक्ति है और 'नाद'—उन दोनों का संमवाय है। 'समवाय'-शब्द से क्षोभ्य-क्षोभक-रूप सृष्टि का कारण समवाय-सम्बन्ध समझना चाहिए।

विन्दु, शक्ति और नाद—इन तीनों से तीन शक्तियाँ—रौद्री, ज्येष्ठा और वामा उत्पन्न हुई हैं। नाद को शिव और शक्ति की संयोगात्मक अवस्था माना जाता है।

सहस्रार : परम चक्र.

आज्ञा-चक्र के ऊपर 'महा-नाद' है। उक्त महा-नाद के ऊपर शङ्खिनी नाड़ी है। उसके अग्र-भाग में अर्थात् शून्याकार-स्थान में तथा ब्रह्मरन्ध्र में स्थित प्रकृति-रूप विसर्ग के निम्न प्रदेश में प्रकाश-स्वरूप पूर्ण चन्द्रमा के समान अत्यन्त श्वेत वर्ण अधो-मुख आनन्द-स्वरूप 'सहस्र-दल कमल' है। इसका केशर-समूह रक्त और भास्वर है तथा अ-कार से लेकर क्ष-कार पर्यन्त पचास मातृकाक्षरों से यह कमल विभूषित है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि इस

सहस्र-दल-कमल दलों के बीस घेरे हैं। प्रति घेरे में पचास दल हैं तथा प्रत्येक वृत्त के दलों में 'अ' से लेकर 'क्ष-कार' पर्यन्त पचास अक्षर सुशोभित हैं।

इस सहस्र-दल-कमल की कर्णिका में स्निग्ध, निर्मल, पूर्ण चन्द्र-मण्डल है। उसके भीतर बिजली के समान चमकदार त्रिकोण है। इस त्रिकोण के मध्य में सब देवों से सेवित, अत्यन्त गुप्त, शून्य-रूप पर-विन्दु है। महा-मोक्ष का प्रधान मूल रूप यह सूक्ष्म कन्द अमा कला और निर्वाण कला से युक्त है।

सहस्र-दल-कमल के मध्य में स्थित चन्द्र-मण्डल के बीच में अन्तरात्मा है, जिसका दूसरा नाम 'हंस-पीठ' अथवा 'हंस' है। ये दोनों एक ही हैं। इसके ऊपर सर्व-तन्त्र-प्रसिद्ध पर-ब्रह्म-स्वरूप से स्थित होने पर भी परमात्म-रूप को छोड़े बिना परमानन्द-स्वरूप, शिव-शक्ति-सामरस्य से उत्पन्न आनन्द-रस को प्राप्त परम शिव श्री गुरु-रूप से साधकों के पुरुषार्थ-लाभ के लिए 'तत्त्वमसि'—वह तू है इत्यादि श्रुति-प्रसिद्ध जीवात्मा और परमात्मा के अभेद ज्ञान का उपदेश देते हैं।

यहाँ यह ध्यान-पूर्वक समझना चाहिए कि श्रीगुरु-रूप-पर-शिव ही दीक्षा-गुरु के रूप में धरा-धाम पर अवतीर्ण होकर अमृत-मय तत्-तत् उपास्य इष्ट-देवता की तत्-तत् मन्त्र-दीक्षा द्वारा साधकों को सुलभ उन्हें परम पुरुषार्थ प्रदान करता है।

पर-शिव के नीचे सबका स्वामी पुं-प्रकृत्यात्मक (प्रकृति-पुरुष-रूप) अन्तरात्मा 'हंस' है। 'हं'-पद से पुरुष का तथा 'स'-पद से प्रकृति का बोध होता है। अतः 'हंस'-पद से प्रकृति-पुरुषात्मक अन्तरात्मा का ज्ञान होता है।

यहाँ पर-शिव श्रीगुरुदेव के ध्यान के विषय में 'शाक्तानन्द-तरङ्गिणी' आज्ञा-चक्र का वर्णन कर

लिखती है कि 'आज्ञा-चक्र' के ऊपर अधो-मुख सहस्र-दल-कमल के नीचे ऊर्ध्व-मुख 'द्वादश-दल-कमल' है। उसके ऊपर सदा-शिव-रूप गुरु का ध्यान करे। 'पादुका-पञ्चक स्तोत्र' में भी अधो-मुख 'सहस्र-दल-कमल' की कर्णिका के मध्य में अकथादि त्रिकोण में श्रीगुरु-रूप पर शिव की स्थिति दर्शाई गई है, किन्तु 'शाक्तानन्द-तरङ्गिणी' में अन्यत्र लिखा है कि 'श्री गुरु-रूप पर-शिव' की स्थिति 'सहस्र-दल-कमल' में ही है और वहीं ध्यान भी करना चाहिए।

इस प्रकार दोनों कल्पों के कथन में से (अर्थात् १ सहस्र-दल-कमल के नीचे द्वादश कमल में तथा २ सहस्र-दल-कमल में कौन-सा ठीक माना जाय? इस पर 'कुलार्णव तन्त्र' का निर्णय है कि 'अपनी परम्परा के अनुसार श्रीगुरुदेव जो बतावें, वहीं शिष्य को करना चाहिए। उसी से सफलता मिलती है।'

यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि गुरुदेव परम्परा से प्रसिद्ध उपासक होने चाहिए, अन्यथा परम्परा कहाँ से आएगी?

सहस्र-दल-कमल की कर्णिका में सब उपासक अपने-अपने इष्ट की स्थिति मानते हैं। यथा—शैव भगवान् शिव की, वैष्णव भगवान् विष्णु की, हरि-हरोपासक हरि-हरि की, शाक्त परा-शक्ति की और योगीन्द्र प्रकृति-पुरुष की स्थिति मानते हैं।

सहस्रार में ध्यान का फल—'सहस्र-दल-कमल' में अपने इष्ट-देवता की स्थिति जानने तथा स्वेष्ट-देव के मन्त्र में दत्त-चित्त होने से इस संसार में शुभाऽशुभ कर्मों के क्षय से तथा भोग के कारण कर्मान्तरों के न होने से पुनः जन्म नहीं होता। ऐसा साधक अभीष्ट कर्म करने को और अनिष्ट कर्मों के

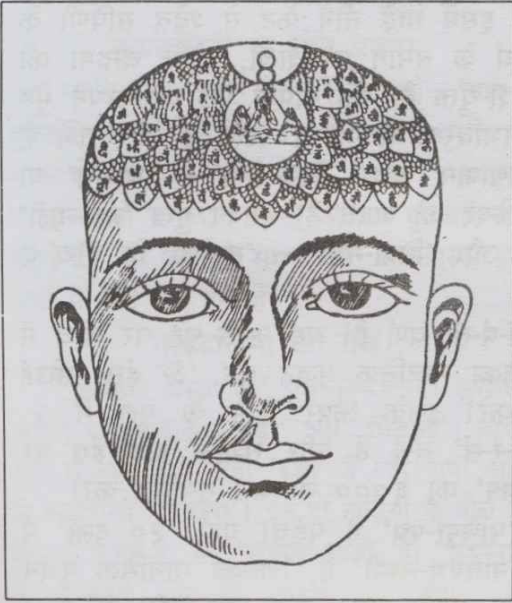
त्य
सि
भी

चन्द्र
प्रात
कम
शक्ति
प्रका

अग्र
प्राणि
चन्द्र
सूर्यो

'कड

त्याग करने में पूर्णतया समर्थ हो जाता है। **खेचर-सिद्धि** उपासक को स्वयं वर लेती है, उसकी वाणी भी निर्मल हो जाती है।



'सहस्र-दल-कमल' के भीतर त्रिकोण में चन्द्रमा की सोलहवीं 'अमा'-कला है। इसका रूप प्रातः-कालीन सूर्य के समान अरुण वर्ण है तथा कमल-नाल के सूक्ष्म तन्तु के सौवें भाग-रूप, पर-शक्ति-स्वरूप, क्षय और उदय से रहित, सतत प्रकाशवती, अधो-मुखी, अमृत वर्षा करनेवाली है।

अमा-कला के भीतर परात्परतरा, बाल के अग्र-भाग के हजारवें भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्म, प्राणियों की चेतना-स्वरूपा, ब्रह्मानन्द-दात्री, अर्ध-चन्द्र के समान कुटिलाकृति, बारह महीनों के बारह सूर्यों के तुल्य तेजः स्विनी **निर्वाण-कला** है।

अमा-कला और **निर्वाण-कला** का स्वरूप 'कङ्काल-मालिनी तन्त्र' में यह बताया है कि अमा-

कला वृद्धि और क्षय से रहित है (घटती-बढ़ती नहीं है) और **निर्वाण-कला** एवं **अमा-कला** के मध्य में कुटिलाकारा **सत्रहवीं कला** है।

निर्वाण-कला के मध्य में सृष्टि के पूर्व वर्तमान, अतएव अपूर्व और अनन्त सूर्य-प्रभा, त्रिभुवनों की माता, **शिव-शक्ति-सामरस्य** से उत्पन्न परमामृत-धारा को धारण करनेवाली, प्राणि-मात्र की **जीवात्मा-स्वरूपा** अर्थात् जीव मात्र के भीतर जीवरूप से स्थित, योगियों को तत्त्वोपदेश देनेवाली, परं-विन्दु-स्वरूपा (बिन्दु-रूप में स्थित) **निर्वाण शक्ति** है।

ऊपर **निर्वाण-कला** के भीतर **निर्वाण-शक्ति** की स्थिति दर्शाने पर भी **नाद** के ऊपर ही **निर्वाण-शक्ति** की स्थिति माननी चाहिए। यतः 'कङ्काल-मालिनी तन्त्र' के द्वितीय पटल में लिखा है कि 'निर्वाण-कला' के भीतर वह्नि-रूपा 'निबोधिका' है और उसके ऊपर 'अव्यक्त नाद' है।

'निर्वाण शक्ति' के भीतर शून्य में नित्य योगियों द्वारा स्व-योग-मात्र से वेद्य अर्थात् जिसको योगी केवल अपने योग द्वारा ही जान सकता है, 'नित्यानन्द' नामक तत्त्व-ज्ञान का प्रकाशक निर्मल पर-ब्रह्म-स्थान है।

सम्प्रदाय के भेद से 'पर-ब्रह्म' की अनेक संज्ञाएँ हैं। वेदान्ती लोग 'ब्रह्म', वैष्णव जन 'विष्णु-पद', योगी 'हंस' और अन्य लोग अनिर्वचनीय आत्म-साक्षात्कार का स्थान 'मोक्ष' कहते हैं। इस प्रकार सम्प्रदायों के भेद से संज्ञा का भेद होने पर भी शैव, शाक्त और वैष्णवादि सभी उपासकों का लक्ष्य-भूत यही पद है।

सहस्राराम्बुजारूढा, सुधा-साराभि-वर्षिणी, तडिल्लता-सम-रुचिः, षट्-चक्रोपरि-संस्थिता। गुरु-मूर्तिः श्रीमाता, त्रिपुरा सदा प्रसीदतु।।

षट्-चक्र-व्यवस्था

❖ 'ब्रह्मर्षि' पण्डित कृष्णानन्द जी मिश्र 'वैद्य', ककरा, प्रयाग-राज (उ०प्र०)

शरीर में '६ चक्र' हैं। पहला 'मूलाधार चक्र' है। इसका स्थान 'लिङ्ग-गुदा' की 'सीबन' पर है। यहाँ 'स्वयम्भू लिङ्ग' है, जो 'ब्रह्म-स्वरूप' है। इसमें साढ़े तीन फेंट से श्वेत सर्पिणी के रूप में 'कुल-कुण्डलिनी' सोई हुई है, जो कोटि सूर्य के समान प्रभावाली, कोटि चन्द्रमा की शीतल-प्रभावाली और कोटि विद्युत् के समान प्रकाश-युक्त है। यह अपनी पूँछ को अपने मुँह में डाले सो रही है। यह 'अव्यक्त शक्ति' है, जो गर्भावस्था में जागृत रहती है और गर्भ से बाहर आते ही सो जाती है। 'हठ-योगी' इसे 'प्राणायाम' द्वारा, 'राज-योगी'— 'भावना' या 'भक्ति-भाव' द्वारा जगाते हैं। जागृत होने पर यह ऊपर को जाती है। इसका मुख 'ब्रह्म-नाड़ी' के नीचे है। 'ब्रह्म-नाड़ी'— 'चित्रा-नाड़ी' के मध्य में और 'चित्रा-नाड़ी'— 'सुषुम्णा' के बीच व 'सुषुम्णा'— 'इडा-पिङ्गला' के बीच है।

१. 'मूलाधार-पद्म' में '४ दल' हैं, जिनमें 'वं-शं-षं-सं' वर्ण हैं। यहाँ श्वेत चूहे पर बीच में गणेश, दाहिने ऋद्धि एवं बाँएँ सिद्धि-शक्ति हैं, जिनका मानसिक पूजन कर 'ॐ हंसः सोऽहं स्वाहा' अजपा-जप का ६०० जप-फल समर्पित करो। इसके ऊपर लिङ्ग के मूल में २. 'स्वाधिष्ठान-पद्म' है, जहाँ '६ दलों' में 'वं-भं-मं-यं-रं-लं' वर्ण हैं और सशक्ति ब्रह्मा हंस पर विराजमान हैं। उनका मानसिक पूजन कर 'अजपा-जप' का ६००० जप-फल समर्पित करो।

इसके ऊपर 'ब्रह्म-नाड़ी' द्वारा 'नाभि-चक्र'— 'मणिपुर-पद्म' में पहुँचो। यहाँ '१० दलों' में 'डं-ढं-णं-तं-थं-दं-धं-नं-पं-फं' वर्ण हैं एवं 'गरुड़-सहित नारायण-लक्ष्मी' हैं, जिनका मानसिक पूजन कर 'अजपा-जप' का ६००० जप-फल समर्पित करो। इससे ऊपर जब 'ब्रह्म-नाड़ी' से ऊपर चढ़े, तो 'हृदय-क्षेत्र' में '१२ दलों' वाला 'अनाहत पद्म' है, जहाँ 'बारह दलों' में 'कं-खं-गं-घं-ङं-चं-छं-जं-झं-ञं-टं-ठं' वर्ण और 'शिव-पार्वती' हैं। पार्वती के दाहिने कन्धे पर गजानन और बाँएँ पर षडानन; शिव के हृदय में गरुड़ारूढ़ नारायण-लक्ष्मी तथा मस्तक पर गङ्गा-चन्द्रमा-नागाधिराज सर्प हैं, जिनका मानसिक पूजन कर 'अजपा-जप' का ६००० जप-फल समर्पित करो। इसके ऊपर जब माँ कुण्डलिनी कण्ठ में चढ़े, तो वहाँ '१६ दलों' वाला 'विशुद्ध-पद्म' है, जिसके '१६ दलों' में १६ स्वर हैं और जहाँ जीवात्मा क्रिया-शक्ति-सहित है। उनका मानसिक पूजन कर 'अजपा-जप' का १००० जप-फल समर्पित करो। फिर माँ भृकुटी-स्थान पर पहुँचती है। यह '२ दलों' वाला 'आज्ञा-पद्म' है, जिसमें 'हं-क्षं' दो वर्ण हैं और यहाँ स-शक्ति गुरुदेव विराजमान हैं। उनका मानसिक पूजन कर 'अजपा-जप' का १००० जप-फल समर्पित करो। इसके ऊपर 'सहस्रार-पद्म' है, जिसके दलों में 'मातृकाएँ' हैं। यहाँ श्वेतकमल पर परम शिव बैठे हैं। भृकुटी तक माँ सर्पाकार है, यहाँ माँ का रूप है। मानसिक पूजन के बाद परम शिव व माँ एक प्रकाश-रूप हो जाते हैं। यहाँ पहले 'अं' से 'क्षं' तक, फिर विलोम 'ळं' से 'अं' तक, पुनः 'ॐ अं नमः' से 'ॐ क्षं नमः' तक तथा विलोम 'ॐ ञं नमः' से 'ॐ अं नमः' तक पढ़कर परम शिव व कुण्डलिनी-स्वरूपा माँ का मानसिक पूजन कर उन्हें एकाकार करो। तब सदाशिव का मानसिक पूजन कर अजपा-जप का १००० जप-फल समर्पित करो।

□□□

श्री कुण्डलिनी शक्ति

* पण्डित श्री कान्तबिहारी मिश्र, पटना (बिहार)

कुण्डलिनी के तीन प्रकार

समष्टि-सृष्टि की कुण्डलिनी को 'महा-कुण्डलिनी' कहते हैं और उसी के व्यष्टि—व्यक्ति में व्यक्त होने पर उसे 'कुण्डलिनी' कहते हैं। सम्पूर्ण जगत् को जो चलाती है, उसे 'अव्यक्त कुण्डलिनी' कहते हैं। 'या ब्रह्माण्डे सा भाण्डे' के अनुसार इन तीनों में कोई भेद नहीं है।

कुण्डलिनी का पथ

'कुण्डले अस्या स्त' इति कुण्डलिनी। कुण्डले अर्थात् दो कुण्डल—'इड़ा' और 'पिङ्गला'। बायीं ओर से बहनेवाली नाड़ी 'इड़ा' है और दायीं ओर से बहनेवाली 'पिङ्गला'। इन दो नाड़ियों के बीच में जिसका प्रवाह है, वह 'सुषुम्ना नाड़ी' है। 'सुषुम्ना' के अन्तर्गत और भी नाड़ियाँ हैं, जिनमें एक 'चित्रणी' नाम की नाड़ी है। इसी 'चित्रणी' नाड़ी से होकर 'कुण्डलिनी का पथ' है। 'सुषुम्ना नाड़ी' के दोनों ओर से बहनेवाली उपर्युक्त दो नाड़ियाँ ही पहले दो कुण्डल हैं।

कुण्डलिनी—नाद, ॐ-कार, मातृकाएँ

'कुण्डलिनी-शक्ति' के व्यक्त होने के साथ ही वेग उत्पन्न होता है। उससे जो पहला 'स्फोट' होता है, उसको 'नाद' कहते हैं। 'नाद' से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप 'महा-बिन्दु' है। 'नाद' के तीन भेद हैं—१. महा-नाद, २. नादान्त और ३. निरोधिनी।

'बिन्दु' के भी तीन भेद हैं—'इच्छा, ज्ञान और क्रिया'; 'सूर्य, चन्द्र और अग्नि'; 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश'। जीव-सृष्टि में उत्पन्न होनेवाला जो 'नाद' है, वही ॐ-कार है, उसी को 'शब्द-ब्रह्म'

कहते हैं। ॐ-कार से ५२ मातृकाएँ उत्पन्न हुई, उनमें पचास अक्षर-मय हैं, इक्यानवीं प्रकाश-रूप और बावनवीं प्रकाश का प्रवाह है। यह बावनवीं मात्रा वही है, जिसे 'सत्रहवीं जीवन-कला' कहते हैं।

उपर्युक्त पचास मातृकाएँ लोम और विलोम रूप से सौ होती हैं। ये ही सौ कुण्डल हैं। इन कुण्डलों को धारण किए हुए मातृका-मयी 'कुण्डलिनी' है। इस 'कुण्डलिनी शक्ति' से चैतन्य जीव देहेन्द्रियादि-युक्त रूप धारण कर 'प्राण-शक्ति' को सज्ज लिए स्थूल शरीर (अन्न-मय कोश) का स्वामी होता है।

अव्यक्त मातृकाओं का स्थान—'सहस्रार'

जीव को जीवत्व की चेतना 'सहस्रार चक्र' से 'अनाहत' में अर्थात् 'हृच्चक्र' में आने पर होती है। 'सहस्रार चक्र' में 'अव्यक्त नाद' है। वहीं 'आज्ञा-चक्र' में आकर ॐ-कार-रूप से व्यक्त होता है। इस ॐ-कार से उत्पन्न होनेवाली पचास मातृकाओं की अव्यक्त स्थिति का स्थान 'सहस्रार चक्र' है। इस स्थान को 'अकुल स्थान' कहते हैं। यही 'श्रीशिव-शक्ति का स्थान' है। श्रीशिव-शक्ति अर्ध-नारी-नटेश्वर हैं। शक्ति अव्यक्ता और शिव व्यक्ता हैं।

अकुल स्थान से उत्पन्न होने वाली जो-जो मातृकाएँ जिस-जिस स्थान में व्यक्त हुई, उन-उन स्थानों को लोभ-विलोम रूप से आगे लिखित श्लोकों में दर्शाया गया है। यह एक माला ही है और यह माला फेरते हुए जप करने से 'पुरश्चरण का फल' मिलता है। कारण इस माला

से 'जप' करने से वृत्ति का इधर-उधर भटकना बन्द हो जाता है।

उक्त ५० मातृकाओं को २५-२५ मातृकाओं के लोम-विलोम क्रम से 'लोम-विलोम श्लोक' में बताया गया है। यथा—

लोम-क्रम	क्षं	विलोम-क्रम	
१. अं	अकुल	ळं	२५
२. आं	महा-बिन्दु	हं	२४
३. इं	उन्मना	सं	२३
४. ईं	समना	षं	२२
५. उं	व्यापिका	शं	२१
६. ऊं	शक्ति	वं	२०
७. ऋं	नादान्त	लं	१९
८. ॠं	नाद	रं	१८
९. लृं	रोधिनी	यं	१७
१०. लृं	अर्ध-चन्द्रिका	मं	१६
११. एं	बिन्दु	भं	१५
१२. ऐं	आज्ञा	बं	१४
१३. ओं	अन्तराल	फं	१३
१४. औं	लम्बिका	पं	१२
१५. अं	विशुद्धि	नं	११
१६. अः	अन्तराल	धं	१०
१७. कं	अनाहत	दं	९
१८. खं	अन्तराल	थं	८
१९. गं	अन्तराल	तं	७
२०. घं	मणिपूर	णं	६
२१. ङं	स्वाधिष्ठान	ढं	५
२२. चं	आधार	डं	४
२३. छं	विषुव	ठं	३
२४. जं	कुल-पद्य	टं	२
२५. झं	कुला	जं	१

लोम-श्लोक

आधार-नाद-सूत्रेण, ध्यायेद् वर्ण-मणीन् क्रमात्।
अकुलं च महा-विन्दुः, उन्मना समना तथा।।
व्यापिका शक्ति-नादान्त-नाद-रोधार्ध-चन्द्रिका।
विन्दुराज्ञा ततश्चैकं, लम्बिकाथ विशुद्धिका।।
एकं ततोऽनाहतं द्वे, मणिपुरं तथैव च।
स्वाधिष्ठानाधारके च, विषु-संज्ञं कुलं तथा।।
कुलाथ चेति स्थानानां, पञ्च-विंशति संख्यका।

विलोम श्लोक

कुलाथ कुल-पद्यं च, विषुवाधार-संज्ञकम्।
स्वाधिष्ठानं मणिपूरमन्तराल-द्वयं तथा।।
अनाहतं चान्तरालं, विशुद्धिश्चाथ लम्बिका।
अन्तरालाज्ञा च विन्दुरर्ध-चन्द्रा च रोधिनी।।
नादो नादान्त-शक्तिश्च, व्यापिका समना तथा।
उन्मना च महा-विन्दुरकुलं च विलोमतः।।
भ्रू-मध्य में 'सोऽहं मन्त्र' के दो बीज 'हं' और 'सं' हैं। इनके अन्तर्गत ॐ-कार बीज से पहले स्वरोत्पत्ति, पीछे व्यञ्जनोत्पत्ति हुई है। भ्रूमध्य-गत 'आज्ञा चक्र' के नीचे 'विशुद्धि, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान' और 'मूलाधार चक्रों' में क्रम से इस वर्णोत्पत्ति का क्रम कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन चक्रों में से ही मातृकात्मक 'स्वर-माला' और 'वर्ण-माला' उत्पन्न हुई। इन मातृकाओं के स्थान जीव के शरीर में निम्नलिखित प्रकार हैं—

अ, आ, क-वर्ग, ह—कण्ठ-स्थान।

इ, ई और च-वर्ग—तालु-स्थान।

ऋ, ॠ और ट-वर्ग—मूर्धा स्थान।

लृ, लृ, त-वर्ग, ल, स—दन्त-स्थान।

उ, ऊ और प-वर्ग—ओष्ठ-स्थान।

'वैखरी' वाणी अर्थात् शब्दोच्चारण। 'वैखरी वाणी' का मूल स्थान 'परा-वाणी' है। शब्द पहले

'परा-वाणी' से उठता है। पहले मन में वृत्ति उठती है, तब वृत्ति-सदृश विचार उत्पन्न होता है। विचार प्रकट करने का मूल स्थान 'परा-वाणी' है। जब विचार सूक्ष्म-रूप में रहता है, तब उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। 'पश्यन्ती' वाणी के शब्द नेत्रों को दिखाई देने लगते हैं। ये शब्द अर्ध-वाक् और रसना की क्रिया तक आते हैं, तब वे 'मध्यमा' वाणी हैं और स्पष्ट शब्दोच्चार होने पर वह 'वैखरी' वाणी है।

सहस्रार के नीचे षोडश-दल सोम-चक्र है, उसके नीचे द्वादश-दल 'मनश्चक्र' है। उसी में विचार उत्पन्न होने का स्थान है। वह मूर्धा-स्थान के ऊपर है। ये चक्र सर्व-मान्य श्रीहाट, गोल्लाट और त्रिकूट चक्रों के समीप ही हैं। 'मनश्चक्र' की नाड़ी 'मनो-वहा' या 'आज्ञा-वहा' नलिका है। श्रवणेन्द्रिय-गोलक 'शब्द-वहा नाड़ी', नेत्रेन्द्रिय-गोलक 'रूप-वहा नाड़ी', वागेन्द्रिय-गोलक 'रस-वहा नाड़ी', प्राणेन्द्रिय-गोलक 'गन्ध-वहा नाड़ी' और स्पर्शेन्द्रिय-गोलक 'स्पर्श-वहा नाड़ी' है। ये नाड़ियाँ 'सहस्रार चक्र' के आस-पास और 'मनोवहा नाड़ी' के ऊपर हैं। 'श्रवणेन्द्रिय'-गोलक यदि नष्ट हो जाए, तो व्यक्ति गूंगा होता है। इन सबसे यह सिद्ध होता है कि ज्ञानेन्द्रिय का स्थान 'सहस्रार चक्र' में है।

कुछ ग्रन्थों में 'मनश्चक्र' का स्थान 'अनाहत' के समीप कहा गया है और इस 'मनश्चक्र' को आठ दल का कहा गया है। इस प्रकार 'मन' के दो भेद हैं—एक विचार करनेवाला मन और दूसरा विषयों को अनुभव करानेवाला। इस दूसरे मन की उत्पत्ति के विषय में 'वामकेश्वर तन्त्र' में कहा गया है कि मस्तक में जैसा 'सहस्रार चक्र' है, 'मूलाधार' में भी वैसा ही 'सहस्रार चक्र' है और 'श्रीकुण्डलिनी' जिस 'स्वयम्भू-लिङ्ग' को घेरकर सोई हुई है, वह लिङ्ग इसी 'मूलाधार' के 'सहस्रार' में है। इस

'तन्त्र' में कहा गया है कि 'रुद्र-ग्रन्थि'—मूलाधार के समीप है और 'ब्रह्म-ग्रन्थि' 'विशुद्ध' के समीप परन्तु अन्य ग्रन्थ में आया है कि 'विशुद्ध' के समीप 'रुद्र-ग्रन्थि', 'मणिपुर' के समीप 'विष्णु-ग्रन्थि' और 'मूलाधार' के समीप 'ब्रह्म-ग्रन्थि' है। इसके अनुसार 'परा'-वाक्—'मूलाधार' में, 'पश्यन्ती'—'मणिपुर' में, 'मध्यमा'—'अनाहत' में और 'वैखरी'—'विशुद्ध' में है तथा 'अनाहत चक्र' के समीप 'अष्ट-दल मनश्चक्र' है।

'जीवो ब्रह्मैव नापरः'—जीव ब्रह्म-रूप ही है और तदनुसार जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है। 'श्रीकुण्डलिनी शक्ति' जैसे ब्रह्माण्ड में है, वैसे ही पिण्ड में है। पिण्ड से पिण्ड का ग्रास करना यह है कि 'कुण्डलिनी'-रूपी पिण्ड देह-रूप पिण्ड का ग्रास करे। 'कुण्डलिनी' जब जाग उठती है, तब वह देह-गत सब त्याज्य पदार्थ, कफ, पित्तादि दोष नष्ट कर डालती है और जब ऊर्ध्व-गामिनी होती है, तब देह के चलन-वलनादि व्यापार बन्द हो जाते हैं। यही क्यों, हृदय का आकुञ्चन और प्रसरण तथा नाड़ी की गति भी बन्द हो जाती है। अन्त में 'कुण्डलिनी शक्ति' सहस्रार-स्थित परम शिव में जा मिलती है। इससे जीव अपने जीवत्व को पीछे छोड़कर 'शिव-पदवी' को प्राप्त हो जाता है।

'कुण्डलिनी शक्ति' और 'प्राण-शक्ति' को साथ लेकर जीव इह-लोक की यात्रा करने के लिए माता के उदर में आता है और साथ-साथ प्रारब्ध कर्म के अनुसार अन्धत्व, मूकत्व आदि दोष भी सङ्ग लेकर आता है। छः महीने तक तो जीव माता के आस-पास ही घूमा करता है। उसके बाद मातृ-गर्भ में प्रवेश करता है। 'कुण्डलिनी शक्ति' जीव के साथ प्रवेश करती हुई 'सहस्रार चक्र' में अपना मुख्य स्थान नियत करती है और पीछे षट्-चक्रों में तथा अन्यान्य सब रन्ध्रों और कुहरों में 'प्राण-

शक्ति' के साथ प्रवेश करती है। अन्त में 'मूलाधार' में स्वयम्भू-लिङ्ग को साढ़े तीन लपेटों में लपेट कर और लिपट कर वह बैठ जाती है या सो रहती है।

सभी जीव 'जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति'—इन तीन अवस्थाओं का अनुभव करते हैं। 'तुरीय अवस्था' का ज्ञान और विज्ञान केवल योगियों को होता है। इन तीन अवस्थाओं में 'कुण्डलिनी' की स्थिति साम्यावस्था में होती है और उसके द्वारा शरीर-धारण का कार्य होता है। अव्यक्त 'सोऽहं'-शब्द ही 'कुण्डलिनी' की साम्यावस्था है। इस अव्यक्त 'सोऽहं'-शब्द की अनुभूति 'आज्ञा-चक्र' में होती है और वही 'सोऽहं'-शब्द प्राण-वायु के सहारे 'अनाहत-चक्र' में पहुँच कर 'अनाहत चक्र' की प्रथम मातृका 'क' का सहारा पाकर 'कोऽहं' शब्द में परिणत होता है। 'आज्ञा-चक्र' तक का अनुभव करानेवाला जीव आत्म-स्वरूप को नहीं भूलता, परन्तु नीचे उतरने पर नाना प्रकार के विषयों में लोलुप होकर वह 'सोऽहं' के बदले 'कोऽहं' कहने लगता है और आस-पास के लोगों के साहचर्य से विकृत-ज्ञान होकर 'देहोऽहं' कहने लगता है और देहात्म-वादी बनता है।

'अधःस्रोता वै जीवाः'—इस वचन के अनुसार 'सहस्रार चक्र' से नीचे आकर 'अनाहत' में, 'अनाहत' से 'मणिपूर' में, फिर 'स्वाधिष्ठान' और वहाँ से 'मूलाधार' में आकर 'प्राण-शक्ति' के सहारे पूर्ण जीवत्व को प्राप्त होता है। परन्तु वही जीव 'ऊर्ध्व-स्रोता वै देवा' इस वचन के अनुसार स्वयम्भू-लिङ्ग को लपेटी हुई 'कुण्डलिनी-शक्ति' को जाग्रत करके ऊर्ध्व-गामी होकर देवत्व को प्राप्त होता है। स्वयं देव-स्वरूप होता है।

चिदाकाश में 'एकोऽहं बहु स्याम्'—रूप 'स्पन्द' हुआ। स्पन्द से 'नाद' उत्पन्न हुआ। 'नाद' के उत्पन्न होने के लिए 'गति' को उत्पन्न होना पड़ता

है। कहते हैं कि विद्युत्-प्रकाश उत्पन्न होने के समय विद्युत्-कण विलक्षण वेग से घूमा करते हैं। उनकी गति का यह वेग यदि नियमित हो, तो वे अणुत्व को प्राप्त होते हैं। वक्र-गति से और सरल गति से घूमनेवाले विद्युत्-कण ही शब्द-रूप गति हैं। यह शब्द सामान्य मनुष्य की श्रवणेन्द्रिय को गोचर नहीं होता। तथापि जिनकी दिव्य श्रवण-शक्ति जागृत हो चुकी है, वे उस शब्द को सुनते हैं। वे तो ग्रह-मालाओं के घूमने की सूक्ष्म-ध्वनि को भी सुनते हैं। ऐसी ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं एक आहत ध्वनि और दूसरी अनाहत। यों ही उत्पन्न होनेवाली आहत ध्वनि से कोई अर्थोत्पत्ति नहीं होती। अनाहत ध्वनि का अर्थ है—'सोऽहं'। यह ध्वनि 'कुण्डलिनी-शक्ति' के जगने पर ही होती है, अन्यथा नहीं। इसके विषय में 'योग-तारावली ग्रन्थ' में श्री शङ्कराचार्य ने कहा है कि योग-शास्त्र के प्रवर्तक भगवान् शिवजी ने मन के लय होने के सवा लक्ष साधन बतलाए हैं। उन सब में 'नादानुसन्धान' सुलभ और श्रेष्ठ है। 'नादानुसन्धान' से प्राण-वायु और मन—ये दोनों परम पद में लय हो जाते हैं।

'नाद' को प्रकट करने का उपाय यह है कि देह में लगभग साढ़े तीन कोटि रोम हैं। जब साधक साढ़े तीन कोटि जप सद्-गुरु-मार्ग से कर लेता है, तब 'अनाहत नाद' प्रकट होता है। यह उपाय 'वायु'-प्रकृतिवालों के लिए है। 'पित्त' प्रकृतिवालों के लिए शीघ्र नाड़ियाँ शुद्ध होने के कारण सवा कोटि जप पर्याप्त है।

मन्त्र-जप में मन्त्र-साधन के अङ्गों पर ध्यान देना आवश्यक है। अङ्गों के साथ जप करने से शीघ्र फल मिलता है। ये अङ्ग १६ हैं। यथा—

(१) भक्ति—१. गौणी (साधन-काल की भक्ति), २. परा (सिद्धावस्था की भक्ति)। 'गौणी' का भेद है वैधी, जो नवधा है। 'परा' का भेद है

‘रागात्मिका’। इन दोनों का विस्तार इस प्रकार है—
वैधी (नवधा भक्ति)—१ श्रवण, २ कीर्तन, ३ स्मरण, ४ पाद-सेवन, ५ अर्चन, ६ वन्दन, ७ दास्य, ८ सख्य, ९. आत्म-निवेदन। प्रारम्भ के छः—**प्रथम अवस्था की भक्ति** के अन्तर्गत हैं। अन्तिम तीन **रागात्मिका** में पहुँचाते हैं।

रागात्मिका—७ गौण रस। यथा—१ हास्य (गोपाल बालक), २ वीर (भीष्मपितामह), ३ करुण (दशरथ), ४ अद्भुत (बलि, अर्जुन, यशोदा), ५ भयानक (कंस), ६ वीभत्स (अघासुर), ७ रौद्र (इन्द्र)।

७. मुख्य रस—१ दास्य (हनुमान) २ सख्य (अर्जुन, उद्धव), ३ वात्सल्य (दशरथ-कौशल्या; नन्द-यशोदा), ४ कान्ता (ब्रज-गोपी), ५ आत्म-निवेदन (नारद), ६ गुण-कीर्तन (व्यास), ७ तन्मयता (परमहंस रामकृष्णदेव)।

(२) शुद्धि—१. शरीर-शुद्धि (स्नान से, जो ७ प्रकार के हैं—१ मान्त्र, २ भौम, ३ आग्नेय, ४ वायव्य, ५ दिव्य, ६ वारुण्य, ७. मानस)।

२. मन-शुद्धि—(दैवी सम्पत्ति के अभ्यास से)

३. दिशा-शुद्धि—(पूर्व - उत्तर मुँह बैठकर जप-ध्यान करने से)।

४. स्थान-शुद्धि—(गो-मय से लीपकर अथवा १ पीपल, २ बरगद, ३ अशोक, ४ बिल्व, ५ आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर जप आदि करने से)।

३. आसन-शुद्धि—१ स्वस्तिक, २ पद्मासन।

४. पञ्चांग-सेवन—१ चण्डी, गीता, २ सहस्र-नाम, ३ स्तव, ४ कवच, ५ हृदय का पाठ।

५. आचार—१ दिव्य, २ दक्षिण, ३ वाम।

६. धारणा—१ अन्तर्धारणा, २ बहिर्धारणा।

७. दिव्य देश-सेवन—१ अग्नि, २ जल, ३ लिङ्ग, ४ स्थण्डिल, ५ कुण्ड, ६ पट, ७ मण्डल, ८ विशिख,

* ‘षट्-चक्र’ एवं ‘कुण्डलिनी’-साधना □ ३७

९ नित्य यन्त्र, १० भाव - यन्त्र, ११ पीठ, १२ विग्रह, १३ विभूति, १४ नाभि, १५ हृदय, १६ मूर्धा।

८. प्राण-क्रिया—१ प्राणायाम, २ कर-न्यास, ३ अङ्ग-न्यास, ४ मातृका-न्यास, ५ ऋष्यादि-न्यास।

९. मुद्रा—अपने-अपने इष्ट-देव के पृथक्-पृथक् मुद्रा।

१०. तर्पण—१ अपने इष्ट-देव का तर्पण २ अन्य देव-देवियों का तर्पण, ३ ऋष्यादि-तर्पण, ४ पितृ-तर्पण।

११. हवन।

१२. बलि।

१३. याग — १ अन्तर्याग, २ बहिर्याग, ३ उपयाग।

१४. जप — १ वाचिक, २ उपांशु, ३ मानस।

१५. ध्यान—अपने-अपने इष्ट-देव के रूप का ध्यान।

१६. समाधि—महा-भाव।

अस्तु, ‘सोऽहं’ ध्वनि पहले अव्यक्त रूप से ‘आज्ञा-चक्र’ में मनोऽनुभूत हुई, फिर ‘अनाहत चक्र’ में जाकर श्रवणेन्द्रिय-गम्य हुई। ‘आज्ञा-चक्र’ की ‘सोऽहं’ ध्वनि में जो ॐ-कार है, उससे स्वर और व्यञ्जन उत्पन्न हुए। इन्हीं को वर्ण (अक्षर) कहते हैं। भगवती को ‘एकानेकाक्षराकृति’ कहा है। अक्षरों से पद हुए, पदों से वाक्य और वाक्यों से भाषा बनी। शब्द अक्षर (अविनाशी) हैं। उच्चारण के पूर्व शब्द थे, उच्चारण के समय भी रहते हैं और उच्चारण हो चुकने पर भी रहते हैं। जैसे अंधेरे में रखा हुआ घट प्रकाश के पूर्व भी है, प्रकाश होने पर भी है और प्रकाश के जाने पर भी है।

जाग - जाग मूलाधार - निवासिनि!

जाग - जाग महिमा - मयि माता! मूलाधार - निवासिनि!

जाग-जाग, उठ महा-शक्ति, अनघे, पर-पुरुष-विलासिनि!॥१

परे परात्पर - तरे सुषुम्णा-मार्ग सु-सूक्ष्म-विहारिनि!

जाग-जाग आघे भुवनेशी! पत्रग-आकृति-धारिनि!॥२

जाग-जाग, उठ-उठ कुल-कामिनि काम-कले सुख-सारे!

हुँ हुँ हुँ हुँ हङ्कारोद - बोधित उठ - उठ भुजगाकारे !॥३

उठ-उठ मूल स्वयम्भू-वेष्टिनि उठ-उठ विद्युत-वर्णिनि!

जाग सार्द्ध-त्रय-बलयाकारे! ब्रह्म-नाडि-मुख-सर्पिणि!॥४

ऊर्ध्व-गामिनी! नद-बद्ध अग्रिम, ब्रह्म-शिर-सञ्चारिनि!

भेद चतुर्व-श-स-ष दल - पद्महिं भूमि-तत्त्व-संहारिनि!॥५

ब-भ-म-य-र-ल दल पद्म-भेद बद्ध, बद्ध आनन्द - स्वरूपे!

ड-ढ-ण-त-थ-द-ध-न-प-फ दल पद्महिं भेद अगम्य अनूपे!॥६

बद्ध क-ख-ग-घ-ङ च-छ-ज-झ-ञ ट-ठ दल-पद्म मनोरम आयो!

मञ्जु कर्णिका 'यं' राजत जहँ, वायु - बीज मन भायो ॥७

तापर दीप-ज्योति ज्यों ज्योति, जीवन-दीप विराजे!

श्वेत-वर्ण आलोकित सब दिशि, मनहु कपर्दी राजे!॥८

गहि मुख में तेहि, बद्ध सुख-कन्दिनि! जनि करु अधिक विलम्बे!

षोडश स्वर - दल पद्म - भेद बद्ध ह - क्ष दल पद्महिं अम्बे !॥९

भेद ताहि दश-शत-दल-पङ्कज माँहि पहुँच सुख-कारी!

शुद्ध शुभ्र कर्पूर-वर्ण गुरु - चरण निरख भय - हारी!॥१०

स्वर्णाभूषण - भूषित सुन्दर श्री 'याकिनि' महतारी!

विविध वर्ण-धारी, सुख-कारी, दश-शत-दलहिं विहारी!॥११

श्रीगुरु-पद-नख दिव्य-ज्योति ते ज्योति त्रिभुवन- लोका!

अतिशय शुभ्र दीप्त दश-दिशि, तहँ धरु जीवन-आलोका!॥१२

गहु माँ! जीव उतरु नीचे, तजि दश - शत कमल-निवासा!

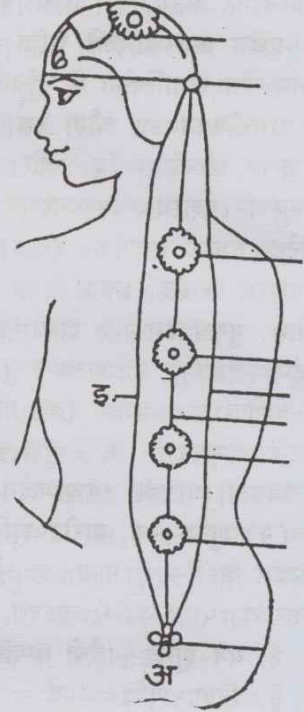
'आज्ञा' और 'विशुद्धि-चक्र' तजि, आउ 'अनाहत' पासा!॥१३

परम तेज-मय दिव्य जीव तहँ, धरि 'मणिपूरहिं' आओ!

'स्वाधिष्ठान' पार करि, अम्बे ! 'मूलाधार' समाओ!॥१४

सार्द्ध-त्रिवलयाकार सु-वेष्टन करिके पौढ़हु, अम्बे!

आत्म-सुधा-सिञ्चन ते जीवन करहु दिव्य जगदम्बे!॥१५



श्रीकुण्डलिनी-शक्ति का वर्णन

* पण्डित श्री कान्तबिहारी मिश्र, पटना (बिहार)

१. तडिल्लता - सम - रुचिर्विद्युल्लेखेव भास्वरा।
२. तडिल्लेखा तन्वी तपन - शशि - वैश्वानर - मयी।
३. शक्तिः कुण्डलिनीति विश्व-जननी व्यापार-बद्धोद्यता।

अर्थात् 'कुण्डलिनी' विद्युत-रेखा के समान सूक्ष्म, चमकीली है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि-इन तीनों जैसी उसकी तेजस्विता है। 'कुण्डलिनी शक्ति' जगज्जननी है, जो क्रिया के लिए उद्यत रहती है।

'कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन' अनेक प्रकार से किया गया है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के पूर्व स्फोट हुआ। वह स्फोट परब्रह्म की 'इच्छा'-शक्ति है और 'महा-नाद' उसकी 'क्रिया'-शक्ति है। 'नाद' के उत्पन्न होने के लिए 'गति' का होना आवश्यक है। गति के होते ही प्रकाश उत्पन्न होता है। उष्णता के बिना गति उत्पन्न नहीं होती। 'उष्णता, नाद और गति' तीनों परस्पर-सापेक्ष हैं। जहाँ 'उष्णता' होगी, वहीं 'गति' होगी और जहाँ 'गति' होगी, वहीं 'नाद' होगा। 'उष्णता' का दृश्य-रूप 'प्रकाश' है। 'महा-नाद' के साथ अक्षरोत्पत्ति हुई है। पाणिनि के अनुसार परम-शिव के डमरु से 'अ-इ-उ-ण' अक्षर उत्पन्न हुए। 'अक्षर' ही 'मातृकाएँ' हैं। जीव की उत्पत्ति के साथ 'नाद', 'अक्षर' और 'प्रकाश' उत्पन्न हुए। मातृकाओं अथवा अक्षरों के साथ प्रकाश का साहचर्य अनिवार्य है अर्थात् प्रकाश अक्षरों में अनुस्यूत है।

'कुण्डलिनी'—सहस्रार में 'प्रकाश'-रूप से स्थित है। जीव को जीवत्व देने के लिए यह शरीर के सूक्ष्मात-सूक्ष्मतर छिद्रों में प्रवेश करके, सूक्ष्म नाड़ी जो 'सुषुम्ना' है, उससे भी सूक्ष्म 'वज्रा',

'वज्रा' से भी सूक्ष्म 'चित्रणी' और 'चित्रणी' से भी सूक्ष्म जो 'ब्रह्म-नाड़ी' है, उस सूक्ष्म-तम 'ब्रह्म-नाड़ी' में से होकर प्रवाहित होती है। ऐसी सूक्ष्म-तम नाड़ी को 'मृणाल'-तन्तु की उपमा दी गई है।

'कुण्डलिनी-योग'—तन्त्र-शास्त्र और हठ-योग में वर्णित है। इसे 'लय-योग' कहा जाता है। प्राण-शक्ति, कुण्डलिनी-शक्ति, मन, मन की वृत्तियाँ—इन सबका लय जिस योग में किया जाता है, उसे 'लय-योग' कहते हैं। 'कुण्डलिनी-योग' में यम-नियमादि अष्टाङ्ग साधन बतलाकर १. शोधन, २. धृति, ३. स्थिरता, ४. धैर्य, ५. लाघव, ६. प्रत्यक्ष और ७. निर्विकल्प समाधि—ये सात अङ्ग वर्णन किए हैं।

कुण्डलिनी-साधना

'सहस्रार' में कामेश्वरी और कामेश्वर का ध्यान करना चाहिए। आमूल सब चक्रों के देवताओं का जो वर्णन है, वह 'पञ्च-ब्रह्मासनासीना पञ्च-ब्रह्म-समन्विता' इस वचन के आधार पर है। श्री कामेश्वरी और कामनाथ आद्य-गुरु हैं। इसलिए उनका स्थान 'सहस्रार' के अन्त में 'श्रीगुरु-पादुका' कहा गया है। 'कुण्डलिनी' का उत्थापन होते ही ये सब चक्र अपने-अपने वर्णों के साथ प्रकाशित देख पड़ते हैं। जिस प्रकार ये चक्र मेरु-दण्ड-गत 'सुषुम्ना-नाड़ी' के भीतर 'वज्रा-नाड़ी' और 'ब्रह्म'-नाड़ी से संलग्न हैं, उसी प्रकार ये चक्र प्राण-मय, तेजो-मय और मनो-मय कोष से भी

४० □ 'षट्-चक्र' एवं 'कुण्डलिनी'-साधना *

संलग्न हैं। 'सहस्रार चक्र' — 'ब्रह्म-रन्ध्र' के ऊपर चार अंगुल फैला हुआ है। 'तन्त्र-शास्त्र' के इस 'लय-योग' में 'कुण्डलिनी का जागना' केवल 'गुरु-कृपा' से ही होता है। इसी से गुरु ही मुख्य देवता माने गए हैं। गुरु पहले 'स्पर्श-दीक्षा', फिर 'दिव्य-दीक्षा' शिष्य को देते हैं। दीक्षा ठीक से हो, तो क्षण-मात्र में ही शिष्य की 'कुण्डलिनी' जाग सकती है। 'कुण्डलिनी' जब 'अनाहत चक्र' में आती है, तब साधक प्रकाश-ही-प्रकाश को देखकर चौंक उठता है। जब 'विशुद्ध' में पहुँचती है, तब निराकार ब्रह्म का दर्शन होता है। 'आज्ञा'-चक्र में पहुँचने पर 'कुण्डलिनी' नीचे नहीं जाती। 'आज्ञा'-चक्र को उद्भासित करके, 'कुण्डलिनी' — 'सहस्रार' में उपस्थित होती है। 'सहस्रार' को प्रज्वलित करना ही 'कुण्डलिनी-साधना' का परम लक्ष्य है।

'सहस्रार' जब पूर्ण रूप से जाग उठता है, तब देहाभिमानि आत्मा में, चाहे जब देह से अपने आप को खींच लेने और चाहे जब देह में लौट आने की शक्ति आ जाती है और यह सब करते हुए चित्त में चैतन्य बना रहता है। इस स्वच्छन्द बिहार को ही उपनिषदों में 'काम-चार' कहा गया है—

'तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।

'तन्त्र' की भाषा में कुण्डलिनी-देवी—सहस्रार में सदा-शिव के साथ' सङ्गता होती हैं। पतञ्जलि कहते हैं—तारकं सर्व-विषयं सर्वथा विषय-क्रमं चेति विवेकज-ज्ञानम् (योग-सूत्र ३/५४)

'चैनिक योग-दीपिका' कहती है—'तब मनुष्य का शरीर और चित्त पर पूर्ण अधिकार होता है, वह सर्वथा सब अवस्थाओं में स्वच्छन्द और सुखासीन होता है, सब बन्धन छूट जाते हैं, क्षोभ का नाम भी नहीं रह जाता, ठीक मध्य में जो दिव्य हृदय है, उसी के साथ वह रहता है।'

यही आईचिन की भाषा में 'ऐक्शन इन इनैक्शन' (अकर्म में कर्म), गीता का 'शरीरं केवलं कर्म' है। उस अवस्था में साधक 'इसके अन्दर होने की जगह इसके ऊपर होता है—यही वास्तव में निर्द्वन्द्व होना है। चैतन्य के उच्च-स्तर में परस्पर-विरोधों का मिलन है।' इसी को सांख्य-मतवाले कहते हैं—'प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः'।

उक्त समय साधक साक्षी, द्रष्टा मात्र रहता है, कर्ता या भोक्ता नहीं रहता। यही 'योग की परम सिद्धि' है। 'योग-सूत्र' में कहते हैं—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम् (योग-सूत्र १/३)।

'छान्दोग्य उपनिषद्' का भी यही कहना है—

एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं।

ज्योति-रूपं सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते।।

अर्थात् 'यह जीव इस शरीर से ऊपर उठ परम-ज्योति को प्राप्त कर अपने स्वरूप में स्थित होता है।'

कुण्डलिनी के सम्बन्ध में कुछ अनुभूतियाँ
श्री श्री माँ और कुण्डलिनी

* अनुराग न रहने पर भी 'जप' करना चाहिए। जिस प्रकार जल में इच्छा से या अनिच्छा से बैठने पर देह भीगता ही है, उसी प्रकार अनुराग न रहने पर भी 'जप' करने से 'देह' 'मन्त्र'-मय होती ही है।

* संख्या रखकर 'जप' करने से संख्या की ओर लक्ष्य रहता है। इसलिए ऐसे ही 'जप' करना। मन के न लगने पर भी 'जप' करते जाना चाहिए। 'जप' करते-करते मन स्वयं ही स्थिर हो जाएगा। मन्त्र का ठीक उच्चारण न होने से सिद्धि में देरी होती है। इस हेतु मन्त्र का उच्चारण ठीक होना चाहिए।

* 'कुण्डलिनी' जगेगी ही। 'जप' करते-करते सब हो जाएगा। मन स्थिर न रहने पर भी तो लाख-लाख 'जप' किया जा सकता है। 'कुण्डलिनी'

जगने के पूर्व 'अनाहत'-ध्वनि सुनी जाती है। माँ जगदम्बा की कृपा न होने से यह नहीं होता। 'जप' करने से उनकी पूर्ण कृपा होती है, इसी से बार-बार कहती हूँ कि जप करो।

परमहंस रामकृष्ण देव और कुण्डलिनी

* जीवात्मा और परमात्मा के योग के उद्देश्य से पहले काम और काञ्चन की आसक्ति त्याग कर निर्जन स्थान में, स्थिर आसन से अनन्य मन होकर ध्यान-चिन्तन करना चाहिए। केवल पुस्तक में ज्ञान की बातें पढ़ने या सुनने से कुछ होने का नहीं, धारणा चाहिए, तभी होगा।

* माँ को व्याकुल होकर रोते-रोते पुकारना चाहिए। तभी 'कुण्डलिनी' जागेंगी। निर्जन में अकेले एकाग्रता के साथ, गाना गाने से भी वे जाग्रता होती हैं—

जागो माँ कुल-कुण्डलिनी,

तुमि ब्रह्मानन्द-स्वरूपिणी।

तुमि नित्यानन्द-स्वरूपिणी,

प्रसुप्त भुजगाकारा आधार-पद्म-वासिनी।

त्रिकोणे जले कृशानु (अग्नि) तापित होइल तनु,

मूलाधार त्यज शिवे, शम्भु सिर वेष्टिनी।

गच्छ सुषुम्नार पथे स्वाधिष्ठाने होउ उदय,

मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाज्ञा-संचारिणी।

शिरसि सहस्र-दले परम शिवेते मिले,

क्रीड़ा कर कुतूहले सच्चिदानन्द-दायिनी।

* गान से ही रामप्रसाद सिद्ध हुए थे। व्याकुल होकर गाना गाने से 'ईश्वर'-दर्शन होता है। 'कुल-कुण्डलिनी' जा त न होने से चैतन्य नहीं होता—भगवान् का दर्शन नहीं होता है। 'भक्ति-योग' से 'कुल-कुण्डलिनी' शीघ्र जाग्रत होती हैं। वे जगकर 'सुषुम्ना-नाडी' मध्य होकर स्वाधिष्ठान, मणिपूर आदि चक्र का भेदन कर अन्त में शिर-मध्य में पहुँचती हैं। इसी को महा-वायु की गति कहते हैं।

* 'षट्-चक्र' एवं 'कुण्डलिनी'—साधना □ ४१

इसके बाद ही समाधि होती है।

* साधारण जीव का मन लिङ्ग, गुह्य और नाभि इतनी दूर में रहता है—खाना, पहनना, रमण करना आदि। साध्य-साधना के बाद कुण्डलिनी के जग पड़ने पर मन इन तीनों को छोड़ देता है।

* जो 'आद्या-शक्ति' हैं, वे ही सभी की देह में 'कुण्डलिनी' के रूप में हैं। बहुत साधना के पश्चात् वे जागती हैं। वेद-मत से चक्रों को 'भूमि' कहते हैं। 'हृदय' चतुर्थ भूमि है— उसी को 'अनाहत पद्म' द्वादश-दल कहा जाता है। 'विशुद्ध चक्र' पञ्चम-भूमि है। इसका स्थान कण्ठ—सोलह दल पद्म है।

* हृदय छोड़कर यदि किसी का मन कण्ठ में पहुँचे, तो उस समय ईश्वर-चर्चा छोड़कर दूसरी कोई भी बातें सुनने या कहने की इच्छा नहीं होती है—जैसे विषयादि की बातें। उस समय मुझे ऐसा भान होता था कि विषय की बातें कान में जाने से ही माथे में जोरों की चोट लगती थी, मानो किसी ने लाठी मारी हो। दूर, पञ्च-वटी में भाग जाता था—जहाँ वह सब सुनने को नहीं मिलता था। विषयी व्यक्ति को देखकर भय से छिप जाता था। आत्मीय स्वजन को देखने ही से मन में भान होता था कि ये सब मुझे पकड़कर अन्ध-कूप में डालने आए हैं। उन सबको देखकर डर से घबड़ा जाता था, श्वास बन्द हो जाता था। जब वहाँ से भाग कर दूर चला जाता था, तब शान्ति मिलती थी।

* 'कण्ठ' में आने पर भी मन फिर लिङ्ग, गुह्य और नाभि में लौट जाता है, इस हेतु यहाँ आने पर भी सावधान रहना चाहिए।

* उसके बाद षष्ठ भूमि है—'आज्ञा-चक्र' (द्वि-दल-पद्म)। इसका स्थान भ्रू-मध्य में है। 'कण्ठ' से चलकर यदि किसी का मन 'भ्रू-मध्य' में उठे, तो गिरने का भय जाता रहता है। तब ईश्वर

के रूप का दर्शन होता है। यहाँ और 'सहस्रार' में एक ही आड़ है, जैसे लालटेन की बत्ती की जलती हुई लौ देख रहे हैं और छूने के हेतु हाथ के पास ही है, परन्तु सीसे के व्यवधान के कारण छू नहीं सकते, उसी प्रकार। उस समय परमात्मा इतने निकट बोध होता है, जैसे उनमें मिल गए हों किन्तु तब भी एक नहीं हो सकता। यहाँ से मन यदि नीचे आता है, तो बहुत हुआ तो हृदय तक। उसके नीचे नहीं जा सकता है। यहाँ पहुँचने पर जीव-कोटि के व्यक्ति फिर नीचे नहीं जा सकते हैं। कारण, यहाँ इक्कीस दिन निरन्तर समाधि में रहने पर यह आड़ टूट जाती है और सहस्रार में परमात्मा के साथ जीव का एकाकार हो जाता है, यही 'सप्तम'-भूमि में उठना है। 'कुण्डलिनी' के वहाँ जाने पर 'समाधि' होती है। 'कुण्डलिनी'-शक्ति 'सहस्रार' में जो सच्चिदानन्द शिव हैं, उनसे मिलित होती है। तब 'समाधि' होती है और बाह्य-ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। इस अवस्था में साधक 'देह-रक्षा' नहीं कर सकता है। मुँह में दूध देने पर भी घूँट लेने की शक्ति नहीं रहती है। इस भाव से इक्कीस दिन रहने पर देह छूट जाता है—मृत्यु होती है।

* साधन-अवस्था में आत्मा का रमण प्रत्यक्ष देखा था। देखा था कैसे 'कुण्डलिनी' जाग्रत हुई और क्रम-क्रम से सभी पद फूट उठे और अन्त में समाधि हुई थी। देखा था, ठीक मेरे ही समान एक लड़का 'सुषुम्ना नाड़ी' के भीतर जाकर जीभ द्वारा योनि-रूप पद के साथ रमण करने लगा था। 'षट्-पद्म' मुदित थे, जैसे-जैसे एक-एक पद्म प्रस्फुटित होता था और सभी अधो-मुख पद्म ऊर्ध्व-मुख हो गए थे। इस प्रकार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार पद्म सभी प्रस्फुटित हो उठे थे। 'कुल-कुण्डलिनी' जाग्रत होने पर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर—इन सब पदों

को एक-एक पार कर हृदय-मध्य अनाहत में जब आती है, तब मन लिङ्ग, गुह्य, नाभि से हट कर चैतन्य होता है और साधक को 'ज्योति'-दर्शन होता है। उस समय वह आश्चर्य-चकित होकर कहता है—'यह क्या' 'यह क्या'!

स्वामी विवेकानन्द और कुण्डलिनी

* 'तड़ित्-प्रवाह' जैसे तार की सहायता से विभिन्न दिशाओं में प्रेरित होता है, ठीक उसी तरह बहिर्विषय से जो ज्ञान-प्रवाह मस्तिष्क को अथवा मस्तिष्क से जो कर्म-प्रवाह बहिर्देश को प्रेरित हो रहा है, वह स्नायु-तन्तु-तार की ही सहायता से हो रहा है। मेरु-मज्जा-मध्यस्थ ज्ञानात्मक और कर्मात्मक स्नायु-गुच्छ स्तम्भ ही योगियों की 'ईड़ा' और 'पिङ्गला' नाड़ियाँ हैं। प्रधानतः उन दोनों नाड़ियों से ही पूर्वोक्त अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी शक्ति-प्रवाह-द्वय आना-जाना कर रहे हैं, परन्तु बात यह है कि इस तरह के किसी प्रकार के तार-तुल्य पदार्थ के सहारे के बिना मस्तिष्क से विभिन्न प्रकार के सम्वाद का चारों ओर प्रेषण और नाना-स्थानों से भेजे उसी मस्तिष्क में सम्वादों का ग्रहण क्यों न होगा? प्रकृति में तो ऐसे व्यापार आए दिन घटते देखे जाते हैं।

यदि मेरु-दण्डस्थ 'सुषुम्णा' के भीतर से स्नायु-प्रवाह चलाया जा सके, तो उक्त समस्या मिट जाएगी। मन ने ही स्नायु-जाल तैयार किया है। उसी को वह जाल तोड़कर, अपना काम चलाना होगा। तभी कुल-ज्ञान हमारे अधिकार में आएगा और देह का बन्धन न रह जाएगा। इस हेतु 'सुषुम्णा नाड़ी' पर विजय पाना हमारे लिए बहुत आवश्यक है।

उपसंहार

* साधारण मनुष्यों के भीतर 'सुषुम्णा' नीचे की ओर से बन्द रहती है। उससे कोई काम नहीं हो सकता। 'सुषुम्णा-द्वार' को खोलकर उसमें स्नायु-

प्रवाह चलाने की निर्दिष्ट प्रणाली है। उसकी साधना में कृत-कार्य होने पर स्नायु-प्रवाह उसके भीतर से चलाया जा सकता है।

* बाह्य विषय के स्पर्श से उत्पन्न प्रवाह जब किसी केन्द्र पर पहुँचता है, तब उस केन्द्र से एक प्रतिक्रिया उपस्थित होती है। स्वैर-केन्द्रों में उन प्रतिक्रियाओं का फल गति होती है। चैतन्य-मय केन्द्रों में पहले अनुभव और तब बाद को गति होती है। इस प्रकार सभी अनुभूतियाँ बहिर्देश से आई हुई क्रियाओं की प्रतिक्रिया मात्र हैं।

* विषय के अभिघात से पैदा हुई स्नायवीय गतियाँ शरीर के किसी-न-किसी स्थान में 'कुण्डली'-कृत होकर रहती हैं और उनके अभिघात के फल से स्वापिक अनुभूति-रूप मृदु प्रतिक्रिया का उद्भव होता है। जिस केन्द्र में विषयाभिघात-जनित गति-प्रवाहों का अवशिष्टांश या संस्कार-समष्टि मानों सञ्चित रहते हैं, उसको 'मूलाधार' कहते हैं और उस 'कुण्डली'-कृत क्रिया-शक्ति को 'कुण्डलिनी' कहते हैं। 'मूलाधार'—'सुषुम्णा' नाम्नी शून्य नाली के नीचे 'कुण्डलिनी' का आधार-भूत पद्य है। योगियों का कहना है कि वह त्रिकोणाकार है। आजकल के शरीर विधान-शास्त्र के मत से भी वह त्रिकोणाकार है।

'कुण्डलिनी' - जागरण

जीवात्मा और परमात्मा के योग के उद्देश्य से पहले काम और काञ्चन की आसक्ति त्याग कर निर्जन स्थान में, स्थिर आसन से अनन्य मन होकर ध्यान-चिन्तन करना चाहिए। केवल पुस्तक में ज्ञान की बातें पढ़ने या सुनने से कुछ होने का नहीं, धारणा चाहिए, तभी होगा।

माँ को व्याकुल होकर रोते-रोते पुकारना चाहिए। तभी 'कुण्डलिनी' जागेंगी। निर्जन में अकेले एकाग्रता के साथ, गाना गाने से भी वे जाग्रता होती हैं।

* परमहंस रामकृष्ण देव

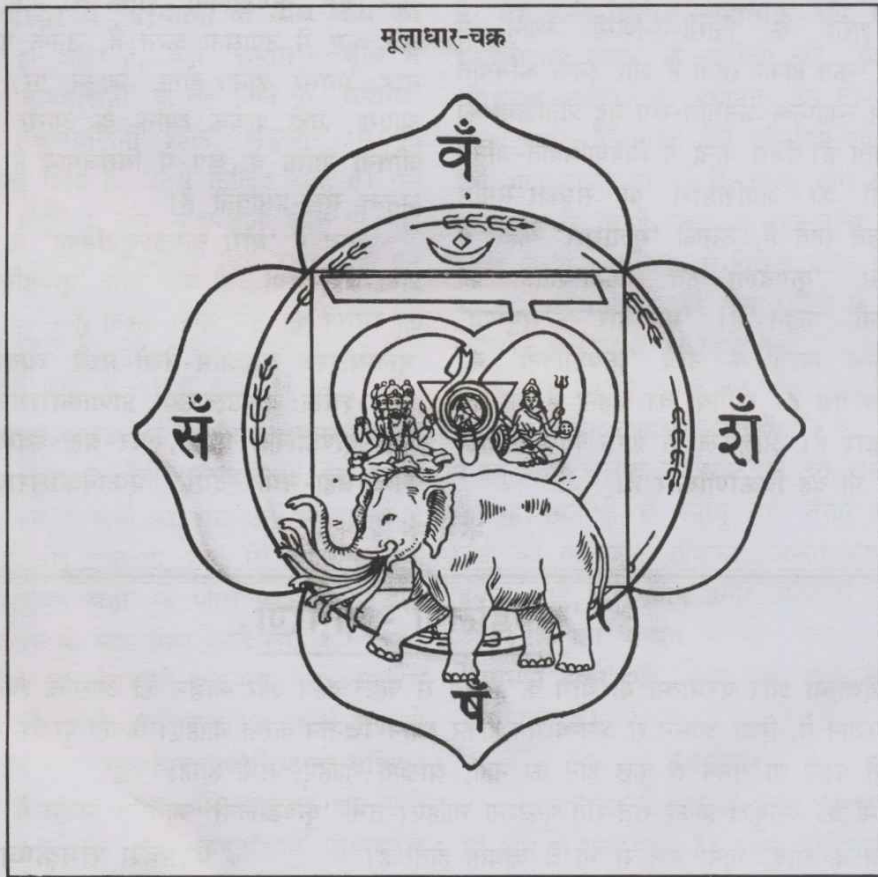
'कुण्डलिनी' को चेतन करना ही तत्त्व-ज्ञान, ज्ञानातीत अनुभूति या आत्मानुभूति प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है। 'कुण्डलिनी' को चेतन करने के अनेक उपाय हैं। किसी की केवल भगवत् प्रेम-बल से 'कुण्डलिनी' सचेत होती है। किसी की सिद्ध महा-पुरुषों की कृपा से और किसी की सूक्ष्म-ज्ञान-विचार द्वारा। जिसे अलौकिक शक्ति या ज्ञान कहते हैं, जहाँ भी कहीं उसका कुछ परिणाम में भी प्रकाश दीख पड़ता है; वहीं समझना होगा कि किञ्चित् परिमाण में 'कुण्डलिनी'-शक्ति 'सुषुम्णा' के भीतर किसी तरह प्रवेश कर गई है। अस्तु, मनुष्य बिना जाने जिस 'कुण्डलिनी'-शक्ति की नामों से, भय और कष्ट में उपासना करते हैं, उनके पास किसी तरह अग्रसर होना होगा, जानने पर समझ में आएगा, वही प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर में प्रकृत जीवनी शक्ति के रूप में विराजमान है और वह अनन्त सुख-प्रसविनी है।

अन्त में 'योग-कुण्डल्युपनिषद्' के शब्दों में शब्द-ब्रह्म-मयी उसी जीव-शक्ति 'कुण्डलिनी देवी' का स्मरण कर उसे नमन करता हूँ—

मूलाधारस्थ-वह्न्यात्म-तेजो-मध्ये व्यवस्थिता।
जीव-शक्तिः कुण्डलाख्या, प्राणाकाराथ तैजसी।
महा-कुण्डलिनी प्रोक्ता, पर-ब्रह्म-स्वरूपिणी।
शब्द-ब्रह्म-मयी देवी, एकानेकाक्षराकृतिः॥

योग — साधना

जिस 'शक्ति' ने यह संसार बनाया है, जो 'शक्ति' दुनियाँ का पालन करनेवाली है और जिस 'शक्ति' में यह संसार लीन हो जाता है, वह 'आद्या' (यानी सबसे पहिली), अजन्मा (यानी जिसके जन्म का कोई पता नहीं), सत्-चित् और आनन्द-मयी ब्रह्म-शक्ति प्राणी मात्र के शरीर में आत्मा के रूप में विराजमान है। वह ब्रह्म-शक्ति ऐसी खिलाड़िन है कि दुनिया को बनाकर आप स्वयं उसमें ही घुसकर बैठ गई! संसार के कण-कण में वह परमात्मा, भगवान्, ईश्वर कही जानेवाली शक्ति छिपी बैठी है!



आत्म-शक्ति अर्थात् 'कुण्डलिनी'

भगवान् से मिलने कहीं नहीं जाना पड़ता क्योंकि वह हमारे ही भीतर-बाहर चारों ओर मौजूद है। अब हम उसे देखें कैसे? उसका उपाय है। हमारे भीतर यह भगवान् कही जानेवाली शक्ति 'सुषुम्णा नाड़ी' के भीतर 'चित्रिणी नाड़ी' में स्थित 'मूलाधार-चक्र' में है, हम अपने ध्यान-बल से उसे वहाँ देख सकते हैं। 'मूलाधार-चक्र' गुदा से दो अंगुल ऊपर और मूत्र निकलने के छिद्र से दो अंगुल नीचे भीतर 'सुषुम्णा-नाड़ी' के छोर पर स्थित है।

'मूलाधार' में काम-बीज 'क्ली' पर स्वयम्भू लिङ्ग है। स्वयम्भू में दो शब्द 'स्वयं' और 'भू' हैं। 'स्वयं' का अर्थ है — खुद, 'भू' का अर्थ है — उत्पन्न। अतः 'स्वयम्भू' के माने हुए खुद ही उत्पन्न होनेवाला। नर्मदेश्वर का स्वयम्भू शिव-लिङ्ग प्रायः सभी जानते हैं। नर्मदा में सफेद रङ्ग के ऐसे ही शिव-लिङ्ग पाए जाते हैं, जिनमें साढ़े तीन घेरेवाली रेखाएँ होती हैं। यही वह आत्म-शक्ति है, जो सारे संसार को चलाती है।

यही राम, यही कृष्ण, यही शिव, यही जगदम्बा, यही गणेश, सूर्य, भगवान्, ईश्वर, यही सृष्टि उत्पन्न करनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली है! यह आत्म-शक्ति ही भिन्न-भिन्न रूपों में आराधकों की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है। स्वयम्भू लिङ्ग पर साँप की तरह लिपटी होने से योगी लोग इसे 'सर्पिणी' या 'नागिन' कहते हैं। गोल कुण्डली-सी बनाकर लिपटी होने से यह 'कुण्डलिनी' है। यह महा-शक्ति प्रत्येक प्राणी के 'मूलाधार' में स्थित है। 'स्वयम्भू लिङ्ग' से लिपट कर यह गाढ़ी नींद में सोई हुई है। जब तक यह सो रही है, मनुष्य पशु - जैसा — है, संसारी — जीवन-मरण के बन्धन में फँसा हुआ है और जिस क्षण यह जगती है, उसी क्षण मनुष्य मुक्त, शिव-स्वरूप, ब्रह्म-रूप हो जाता है।

जप, तप, पूजन, ध्यान, योग आदि का अर्थ

जप, तप, पूजन, कीर्तन, भजन, ध्यान, धारणा, योग आदि सब प्रयत्न केवल उक्त शक्ति को जगाने के लिए ही किए जाते हैं, पर इन सब प्रयत्नों से कई जन्मों की साधना के उपरान्त यह जगती है। पूर्व-जन्मों की याद न होने से हम इस बात को प्रायः समझ नहीं पाते। हमारे प्रमुख धर्म-शास्त्र सब एक आवाज में यही कहते हैं। 'ब्रह्माण्ड-पुराण' में कहा गया है —

“यस्यान्य-देवता-नाम-कीर्तनं जन्म-कोटिषु।

तस्यैव भवति श्रद्धा, श्रीदेवी-नाम-कीर्तने॥”

“चरमे जन्मनि यथा, कुण्डल्योपासको भवेत्॥”

अर्थात् दूसरे देवता राम, कृष्ण, शिव, सूर्य, विष्णु, सत्यनारायण, भैरव इत्यादि का नाम-कीर्तन (अर्थात् भजन-पूजन) जो करोड़ जन्म कर चुका होता है, उसके हृदय में पराम्बा भगवती (जगदम्बा) के नाम-कीर्तन में श्रद्धा पैदा होती है, जैसे कि आखिरी जन्म में (जिसके बाद जन्म नहीं लेना है) 'कुण्डलिनी' का साधन करवानेवाला मिलता है और साधक 'कुण्डलिनी- जागरण' का साधन प्रारम्भ करता है। ऐसे ही एक स्थान पर कहीं कहा है (श्लोक याद है, पर यह याद नहीं रहा कि किस 'पुराण' में या किस 'धर्म-शास्त्र' में कहाँ पढ़ा था) —

यस्य नो पश्चिमं जन्म, यदि वा शङ्करः स्वयम्।

तेनैव लभ्यते विद्या, कुण्डली योग-कारिणी॥

अर्थात् “भले साक्षात् शङ्कर ही क्यों न हों, ‘कुण्डलिनी’ - जागरण कर ‘सहस्रार’ में उसका योग करने की विद्या केवल उसी को मिल सकती है, जिसे फिर जन्म ग्रहण नहीं करना है।”

‘कुण्डलिनी’ का जागना

अस्तु! ‘कुण्डलिनी’ महा-शक्ति को जगाना ही सभी साधनाओं का रहस्य है। उसे जगाकर श्री गुरुदेव के वामाङ्ग में ले जाना ही साधना की आखिरी सीढ़ी है। ‘क्ली’ काम-बीज, जो स्वयम्भू लिङ्ग का आधार है अर्थात् जिस पर स्वयम्भू लिङ्ग प्रतिष्ठित है (ठहरा हुआ है), वह अग्नि-रूप है। ‘प्राण’-वायु (नाक से हम जो साँस लेते हैं) और ‘अपान’-वायु (गुदा में रहनेवाली वायु) जब ‘मूलाधार’-चक्र में मिलाई जाती हैं, तो इनके वेग के कारण ‘क्ली’ में स्थित कामाग्नि भड़क उठती है। उस अग्नि से तपकर ‘कुण्डलिनी’ जगकर ऐसे सीधी हो जाती है, जैसे डण्डे से मारा हुआ साँ! कुण्डली छोड़कर झटके से सीधा हो जाता है!

‘मूलाधार-चक्र’ की साधना

‘प्राण’-वायु (नाक में चलनेवाली साँस) को पहले खींच कर भावना द्वारा ‘मूलाधार’-चक्र में ले जाएँ। इसी समय ठोढ़ी को छाती से लगाकर गले की सब नाड़ियों के मुँह बन्द कर दें। इसे ‘जालन्धर बन्ध’ कहते हैं। इसके साथ ही पेट को भीतर खींचकर पीठ से लगाकर ‘उड्डियान बन्ध’ लगाएँ और गुदा को ऊपर खींचकर ‘मूल-बन्ध’ लगा दें। ध्यान में ‘क्ली’ से अग्नि की लपट उठना, ‘कुण्डलिनी’ का (विद्युत् की तरह) सीधा होना, ‘सुषुम्णा’ में सीधे ऊपर चढ़कर श्री गुरु-चक्र में पहुँचना और श्री गुरु-शक्ति माँ के रूप में बदल कर श्रीगुरु के वाम अङ्ग में विराजना, फिर श्वास बाहर निकालते समय उसका वापिस नीचे आकर कुण्डली के आकार में स्वयम्भू लिङ्ग से लिपट जाना देखते जाएँ।

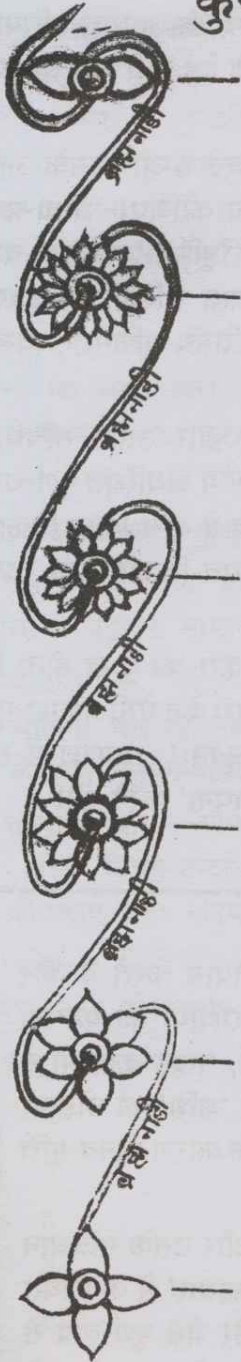
श्वास बाहर निकालते हुए जालन्धर बन्ध, उड्डियान बंध और मूल-बन्ध तीनों छोड़ते जाएँ। यह ध्यान रहे कि साँस एकदम झटके से बाहर न निकले। ऐसा करने को पहिले बाँएँ स्वर से साँस खींचें, उसे मूलाधार में रोककर यह सब देखें (यानी मूल-बन्ध से अपान वायु को उसमें मिलाकर अग्नि जगना, कुण्डलिनी जगना आदि सब देखें)। फिर दाहिने स्वर से साँस खींचें और वैसा ही सब काम करके बाँएँ से बाहर निकालें। तीसरी बार फिर बाँएँ से साँस खींचें और सब काम करके दाहिनी से निकालें। इस काम को करने में जो पसीना आए, उसे शरीर में ही रगड़ लें। कभी भूलकर भी पसीने को हवा में मत सुखाएँ। यह पसीना ही ‘योग’ का तेज है। यदि हवा में सुखाया गया, तो दिन-पर-दिन शरीर का तेज घटेगा और साधना असम्भव हो जाएगी।

‘मूलाधार’-चक्र की साधना के बाद ‘मणिपूर’-चक्र में (नाभि में) इसी प्रकार ‘प्राण-अपान’ को मिलाकर अग्नि-बीज ‘३’ से आग जलना और ‘कुण्डलिनी’ का जगना देखना चाहिए। ‘मणिपूर’-चक्र का ध्यान अच्छी तरह याद रखना चाहिए। अग्नि-तत्त्व के त्रि-कोण में ‘३’ अग्नि-बीज देखना चाहिए। त्रिकोण लाल रङ्ग का है। अग्नि-बीज पर ‘कुण्डलिनी’ को पाँच फेरे दिए देखना चाहिए। □

देह के भीतर की अग्नि :

कुण्डलिनी - तत्त्व का रहस्य

* 'कुल-वाणी-रत्न' श्री अमर सिंह 'अमर', बाँस मण्डी, प्रयाग-राज
(३० प्र०)



गुह्य-द्वार और उपस्थ के मध्य स्थान में एक अधोमुख पद्म है। इस पद्म का नाम 'मूलाधार' या 'क्षिति - चक्र' है। इस चक्र में 'ब्रह्मा' अधिष्ठित हैं। 'मूलाधार' पद्म चार दलों का है और इसके चारों दल 'व-श-ष-स' — इन चार मातृका-वर्णों से युक्त हैं। 'मूलाधार' पद्म की कर्णिका में एक 'त्रिकोण-यन्त्र' है। 'त्रिकोण-यन्त्र' में इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति स्थित हैं। 'त्रिकोण' के मध्य में कोटि सूर्य के समान प्रभा-पूर्ण 'स्वयम्भू-लिङ्ग' विराजमान है। 'स्वयम्भू-लिङ्ग' के ऊपर 'काम-बीज' (क्लीं) है और 'काम-बीज' के ऊपर शङ्खावर्त के तुल्य सार्द्ध-त्रिवेष्टन-वेष्टिता ब्रह्म-विग्रहा शिखाकारा भुजङ्गिनी के समान 'कुल-कुण्डलिनी' है, जो अपने मस्तक और पूँछ से 'ब्रह्म-द्वार' का अवरोध करके निद्रा-मग्न रहती है।

मानव-देह के गुप्त-देश के दो अङ्गुल ऊपर और मेढ्र के दो अङ्गुल नीचे जो स्थान है, उसी को देह का 'मध्य स्थान' कहते हैं। देह के इस 'मध्य स्थान' में पिघले हुए स्वर्ण के तुल्य प्रभावाली, त्रिकोणाकार और प्रज्वलित शिखावाली अग्नि अवस्थित है। इसी को 'देह में रहनेवाली अग्नि' कहते हैं।

याज्ञवल्क्य मुनि अपनी गार्गी देवी को सम्बोधित करके कहते हैं — "द्विजोत्तमे! जो ज्ञानी व्यक्ति योगाभ्यास के द्वारा अपनी देह में भीतर की अग्नि के साथ अपने देह के भीतर की वायु की समता या न्यूनता का साधन कर सकते हैं, वे नरोत्तम व्यक्ति ब्रह्म-विद् और सबके पूज्य होते हैं। अतएव तुम भी नित्य योगाभ्यास करके योग-समुत्थ आत्म-स्थित बह्नि के द्वारा आत्म-स्थित वायु को जय करो।"

जिस प्रकार स्वर्णकार अपने यन्त्र से सोना गला लेता है, उसी प्रकार साधक सद्-गुरु के उपदेश से कुम्भक प्राणायाम करके नाभि में वायु को धारण कर लेता है और उस वायु से उत्तेजित होकर 'कुण्डलिनी'-शक्ति 'सुषुम्णा' के रास्ते से 'षट्-चक्र-भेद' करती हुई 'सहस्रार' में 'परम शिव' से जा मिलती है।

'रवि' और 'चन्द्र' के परस्पर सप्तमस्थ होने से 'पूर्णिमा' की उत्पत्ति और दोनों के एक - राशिस्थ होने से 'अमावास्या' का उद्भव होता है। नियत परिभ्रमण-शील 'रवि' और 'चन्द्र' के अनुसार प्रतिमास एक बार 'अमावास्या' और एक बार 'पूर्णिमा' - तिथि होती है। किन्तु, मानव-देह-रूपी क्षुद्र ब्रह्माण्ड में 'सूर्य' और 'चन्द्र' की अद्भुत लीला दिखाई देती है।

'मूलाधार' के क्षिति-चक्र में जीवात्मा के रूप में रूप में सूर्य-देव निवास करते हैं और उसके ऊपर 'आज्ञा-चक्र' तथा जो पाँच चक्र हैं, उन सबको लेकर छः राशियों की कल्पना कीजिए। 'आज्ञा-चक्र' के अर्द्ध में, तृतीय-धाम 'सहस्रार' (सप्तम राशि) में, पन्द्रह कलाओं से पूर्ण 'पूर्णिमा' का पूर्ण-चन्द्र विराजमान है। इसलिए मानव देह में 'रवि' और 'शशि' को छोड़कर जो सात राशियाँ हैं, उनकी अवस्थिति से मानव देह में पूर्ण चन्द्र के विकास के कारण मानव-मूर्ति ज्योतिर्मय पूर्णिमा - स्वरूप की मूर्ति होती है।

'मूलाधार' में ब्रह्म-विग्रह वाली विद्युन्निभा 'कुण्डलिनी' की ज्योति से और उसके सन्निधान 'दीप-कलिका' के आकार में प्रज्वलित जीवात्मा-रूपी रवि की ज्योति से 'सहस्रार' में अवस्थित पूर्ण-चन्द्र की ज्योति सुषुम्णा के रन्ध्र-पन्थ से होकर परस्पर मिल जाती है। जैसे पूर्ण-चन्द्र से सारा विश्व विकास पाता है, उसी तरह देह के भीतर इस वैद्युतिक प्रभा से मानव-देह भी दिन-रात विकास-युक्त रहती है।

साधना के द्वारा उक्त तत्त्व का ज्ञान होने से मनुष्य को न तो किसी प्रकार का दुःख होता है, न भय। मानव-देह इस तत्त्व को हृदयङ्गम कर प्रकाश-मय हो जाती है। कभी हमारा देश ऐसी प्रकाश-मय मानव-देहों से परिपूर्ण था। तभी विद्वानों ने इसका नाम 'भारत' अर्थात् 'भा+रतः' - प्रकाश में रत रखा था। आवश्यकता है इस 'तत्त्व - ज्ञान' को पुनः समझने व तदनुसार 'साधना' करने की।



★ मानव-देह ★

'मूलाधार' के क्षिति-चक्र में जीवात्मा के रूप में रूप में सूर्य-देव निवास करते हैं और उसके ऊपर 'आज्ञा-चक्र' तथा जो पाँच चक्र हैं, उन सबको लेकर छः राशियों की कल्पना कीजिए। 'आज्ञा-चक्र' के अर्द्ध में, तृतीय-धाम 'सहस्रार' (सप्तम राशि) में, पन्द्रह कलाओं से पूर्ण 'पूर्णिमा' का पूर्ण-चन्द्र विराजमान है। इसलिए मानव देह में 'रवि' और 'शशि' को छोड़कर जो सात राशियाँ हैं, उनकी अवस्थिति से मानव देह में पूर्ण चन्द्र के विकास के कारण मानव-मूर्ति ज्योतिर्मय पूर्णिमा - स्वरूप की मूर्ति होती है।

'मूलाधार' में ब्रह्म-विग्रह वाली विद्युन्निभा 'कुण्डलिनी' की ज्योति से और उसके सन्निधान 'दीप-कलिका' के आकार में प्रज्वलित जीवात्मा-रूपी रवि की ज्योति से 'सहस्रार' में अवस्थित पूर्ण-चन्द्र की ज्योति सुषुम्णा के रन्ध्र-पन्थ से होकर परस्पर मिल जाती है। जैसे पूर्ण-चन्द्र से सारा विश्व विकास पाता है, उसी तरह देह के भीतर इस वैद्युतिक प्रभा से मानव-देह भी दिन-रात विकास-युक्त रहती है।

कुण्डलिनी की मन्त्रात्मक साधना

गुप्तावतार बाबाश्री द्वारा सङ्कलित 'तन्त्र-संग्रह' में 'कुण्डलिनी-प्रकरण' के अन्तर्गत निम्न-लिखित साधना दी गई है। इस साधना के प्रारम्भ में गुरुदेव से प्रत्यक्ष अथवा मानसिक रूप से कुण्डलिनी-मन्त्र की साधना करने की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। फिर अपनी देह के मूलाधार-चक्र की कर्णिका के अन्तर्गत त्रिकोण में विराजमान अधो 'स्वयम्भू-लिङ्ग' को साढ़े तीन फेरों द्वारा लपेटे हुई प्रसुप्त नागिन के आकारवाली अपने 'इष्ट-देवता' के स्वरूप जैसी 'कुल-कुण्डलिनी' का ध्यान करो। 'ह्रूं' या 'हंसः' मन्त्र से त्रिकोण-मण्डल की अग्नि को अपान वायु से प्रज्वलित कर उसकी उष्णता से उसके चैतन्य होने की भावना करो। फिर भावना द्वारा ही उसे 'ब्रह्म-मार्ग' से सहस्रार में ले जाय और वहाँ 'पर-शिव' से उसके सामरस्य का ध्यान करो। अब क्रमशः विनियोगादि निम्न क्रियाएँ करते हुए विधि-पूर्वक अभीष्ट 'कुण्डलिनी-मन्त्र' का पुरश्चरण करो। विनियोग के पूर्व यथा-विधि सङ्कल्प कर लो। सङ्कल्प के अन्त में निम्न वाक्य की योजना कर लेनी चाहिए—

इष्ट-देवता-स्वरूपा-कुल-कुण्डलिनी-प्रीत्यर्थे अमुकाक्षर-कुल-कुण्डलिनी-मन्त्रस्य पुरश्चरणमहं करिष्ये।

'इष्ट-देवता' शब्द के स्थान पर अपने देवता के नाम का उच्चारण करना चाहिए। अब 'विनियोग' पढ़कर सामान्यार्घ्य का जलोत्सर्ग करे या हाथ जोड़कर नमस्कार करे—

विनियोग— ॐ अस्य सर्व-सिद्धिद-श्रीकुण्डलिनी-महा-मन्त्रस्य भगवान् श्रीमहाकाल ऋषिः, विश्व-व्यापिनी महा-शक्ति-श्रीकुण्डलिनी देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, माया (हीं) बीजं, सिद्धिः शक्तिः, प्रणवः (ॐ) कीलकं, चतुर्वर्ग-प्राप्तये जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीमहाकाल-ऋषये नमः शिरसि। विश्व-व्यापिनी-महा-शक्ति-श्रीकुण्डलिनी-देवतायै नमः हृदि। त्रिष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे। माया-बीजाय नमः लिङ्गे। सिद्धि-शक्तये नमः नाभौ। प्रणव-कीलकाय नमः पादयोः। चतुर्वर्ग-प्राप्तये जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

विशेष— विनियोग और ऋष्यादि-न्यास में 'महा-शक्ति' शब्द के आगे अपने इष्ट-देवता का नाम जोड़ लो यथा— श्रीकाली-स्वरूपा, श्रीतारा-स्वरूपा, श्रीषोडशी-स्वरूपा इत्यादि।

षडङ्ग-न्यास—

हां

हीं

हूं

हैं

हौं

हः

कर-न्यास

अंगुष्ठाभ्यां नमः

तर्जनीभ्यां स्वाहा

मध्यमाभ्यां वषट्

अनामिकाभ्यां ह्रूं

कनिष्ठाभ्यां वौषट्

करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्

अङ्ग-न्यास

हृदयाय नमः

शिरसे स्वाहा

शिखायै वषट्

कवचाय ह्रूं

नेत्र-त्रयाय वौषट्

अस्त्राय फट्

[१] ॐ नील - तोयद - मध्यस्थ - तडिल्लेखेव भास्वरां नीवार-शूक - वत् - तन्वीं पीतां भास्वदनुपमां॥
तस्याः शिखाया मध्ये च, परमोर्ध्व - व्यवस्थितां स ब्रह्मा स शिवः सूर्यः, शङ्करः परम - विराट्॥

स एव विष्णुः स प्राणः, स कालाग्निः स चन्द्रमा॥

[२] ॐ प्रसुप्त - भुजगाकारां, स्वयम्भू - लिङ्गमाश्रितां, विद्युत् - कोटि - प्रभां देवीं, विचित्र-वसनान्वितां
शृङ्गारादि - रसोल्लासां, सर्वदा कारण - प्रियाम्॥

[३] ॐ त्रैलोक्यं तेजसा व्याप्तं, मण्डलस्थां महोत्सवां तडित्-कोटि-प्रभा-दीप्तिं, चन्द्र-कोटि-सुशीतलां॥
सार्द्ध - त्रिवलयाकार - स्वयम्भू- लिङ्ग - वेष्टितां उत्थापये महा-देवीं, महा-वक्त्रां मनोन्मनीम्॥
श्वासोच्छवासाद् गच्छन्तीं, द्वादशांगुल - रूपिणीं योगिनीं खेचरीं वायु - रूपां मूलाम्बुज-स्थितां॥
चतुर्वर्ण - स्वरूपां तां, वकारादि - समान्तकां कोटि- कोटि - सहस्रार्क-किरणोज्ज्वल-मोहिनीम्॥
महा-सूक्ष्म - पथ - प्रान्तरान्तरान्तर - गामिनीं त्रैलोक्य - रक्षितां वाक्य-देवतां शब्द-रूपिणीम्॥
महा-बुद्धि-प्रदां देवीं, सहस्र - दल - गामिनीम् महा-सूक्ष्म - पथे तेजो-मयीं मृत्यु-स्वरूपिणीम्॥
काल-रूपां ब्रह्म-रूपां, सर्वत्र सर्व - चिन्मयीम् ऊर्ध्वोद्गमन-काले तु, महा - तेजो-मयीं स्मरे॥
प्रति - प्रयाण - काले तु, सुधा-धाराभिराप्लुतां महा - कुण्डलिनीं देवीममृतानन्द - विग्रहाम्॥

मानस पूजन— 'लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीमहा-कुण्डलिनी-पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि'—

यह पढ़कर अधो-मुख कनिष्ठांगुष्ठ योग से गन्ध-मुद्रा दिखाए।

'हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीमहा-कुण्डलिनी-पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि'—

यह पढ़कर अधो-मुख तर्जनी-अंगुष्ठ योग से पुष्प-मुद्रा दिखाए।

'यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीमहा-कुण्डलिनी-पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि'—

यह पढ़कर ऊर्ध्व-मुख-तर्जन्यंगुष्ठ योग से धूप-मुद्रा दिखाए।

'रं वन्धात्मकं दीपं श्रीमहा-कुण्डलिनी-पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि'—

यह पढ़कर ऊर्ध्व-मुख मध्यमांगुष्ठ-योग से दीप-मुद्रा दिखाए।

'वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीमहा-कुण्डलिनी-पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि'—

यह पढ़कर ऊर्ध्व-मुख अनामांगुष्ठ-योग से नैवेद्य-मुद्रा दिखाए।

'शं शक्त्यात्मकं ताम्बूलं श्रीमहा-कुण्डलिनी-पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि'—

यह पढ़कर ऊर्ध्व-मुख सर्वांगुलियों से ताम्बूल-मुद्रा दिखाए।

मानस पूजन कर निम्न-लिखित किसी एक अभीष्ट मन्त्र का निर्दिष्ट संख्या में जप करे—

मन्त्र— (१) ॐ ऐं हां हीं हूं हैं हौं हः कुल-कुण्डलिनि जगन्मातः सिद्धिं देहि देहि

स्वाहा— २६ अक्षर।

(२) ॐ ऐं हीं हां हीं हूं हैं हौं हः जगन्मातः सिद्धिं देहि देहि स्वयम्भू-
लिङ्गमाश्रितायै विद्युत्-कोटि-प्रभायै महा-बुद्धि-प्रदायै सहस्र-दल-गामिन्यै स्वाहा—५२ अक्षर।

जप कर चुकने के बाद जप-फल को देवी के प्रति समर्पित करो। यथा—

जप-समर्पण—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं, गृहाणास्मत्-कृतं जपम्।

त्वत्प्रसादान्मे दे वि! सिद्धिर्भ वति महेश्वरि!॥

इसके बाद कुण्डलिनी की स्तुति एवं स्तोत्र, कवच, सहस्र-नामादि का पाठ करो। यथा—

[१] कुण्डलिनी-स्तुति

ॐ नमस्ते देव-देवेशि! योगीश-प्राण-वल्लभे! सिद्धिदे! वरदे! मातः! स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्टिते॥

ॐ प्रसुप्त-भुजगाकारे! सर्वदा कारण- प्रिये! काम-कलान्विते! देवि! ममाभीष्टं कुरुष्व च॥

ॐ असारे घोर-संसारे, भव-रोगात् कुलेश्वरि! सर्वदा रक्ष मां देवि! जन्म-संसार-सागरात्॥

[२] कुण्डलिनी-स्तोत्राष्टक

जन्मोद्धार - निरक्षिणीह तरुणी वेदादि-बीजादिमा,

नित्यं चेतसि भाव्यते भुवि कदा सद्-वाक्य-सञ्चारिणी।

मां सा तु प्रियदा सदा सविपदं सङ्घातये श्रीधरे!

घात्रि! त्वं स्वयमादि - देव - वनिता दीनाति-दीनं परम्॥१॥

रक्ताभामृत - चन्द्रिका लिपि-मयी सर्पाकृतिर्निद्रिता,

जाग्रत् - धर्म - समाश्रिता भगवती त्वं मां समालोकय।

मांसोद्गन्ध - कगन्ध-दोष-जड़ितं वेदादि-कार्यान्वितं,

स्वल्पान्यामल - चन्द्र - कोटि-किरणे नित्यं शरीरं कुरु॥२॥

सिद्धार्थी निज-दोष-वित् खल-गतिर्व्याधीयते विद्यया,

कुण्डल्या कुल - मार्ग - युक्त-नगरी सायान्हमाज्ञाश्रया।

यद्येवं भजति प्रभात - समये मध्याह्न - कालेऽथवा,

नित्यं यः कुल-कुण्डली-जप-पदाम्भोजं स सिद्धो भवेत्॥३॥

वाय्वाकाश-चतुर्दलेऽति-विमले वाञ्छा - फलोन्मूलके,

नित्यं सम्प्रति नित्य-देह घटिता सांकेतिता भाविता।

विद्या-कुण्डल-मालिनी स्व-जनिनी सार-क्रिया भाव्यते,

यैस्तैः सिद्ध-कुलोद्भवैः प्रणतिभिः सत्-स्तोत्रकैः शम्भुभिः॥४॥

धाता - शङ्कर-विमोहिनीति बलवच्छाया-पटोद्गामिनी,
 संसारादि - महा - सुख-प्रहने! तत्र स्थिता योगिनी।
 सर्व - ग्रन्थि-विभेदिनी सु-भुजगा सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा,
 ब्रह्म - ज्ञान - विनोदिनी कुल-कुठाराघातिनी भाव्यते॥५॥
 वन्दे श्रीकुल-कुण्डलीं त्रिवलिभिः सार्द्धं स्वयम्भू-प्रियां,
 प्रावेष्ट्याम्बर - चित्त-मध्य-चपला बालाबला निष्कला।
 या देवी परिभाति वेद - वदना सम्भावनी तापिनी,
 इष्टानां शिरसि स्वयम्भु-वनिता सम्भावयामि क्रियाम्॥६॥
 वाणी - कोटि-मृदङ्ग-नाद-मदना निश्रेणि-कोटि-ध्वनिः,
 प्राणेशी प्रियताममूलक - मनोल्लासैक - पूर्णानना।
 आषाढोद्भव - मेघ-राजि-जनित-ध्वान्तानना स्थायिनी,
 माता सा परिपातु सूक्ष्म - पथगे! मां योगिनां शङ्करी॥७॥
 त्वामाश्रित्य नरा व्रजन्ति सहसा वैकुण्ठ - कैलासयोः,
 आनन्दैक - विलासिनीं शशि-शतानन्दाननां कारणाम्।
 मातः श्रीकुल-कुण्डली-प्रिय-कले! काली-कुलोद्दीपने!
 तत् - स्थानं प्रणमामि रुद्र - वनिते! मामुद्धर त्वं पथे॥८॥

॥फल-श्रुति॥

कुण्डली-शक्ति-मार्गस्थं, स्तोत्राष्टक-महा-फलम्। यः पठेत् प्रातरुत्थाय, स योगी भवति ध्रुवम्॥१॥
 क्षणादेव हि पाठेन, कवि - नाथो भवेदिह। पावित्री कुण्डली योगी, ब्रह्म-लीनो भवेन्महान्॥२॥
 इति ते कथितं नाथ! कुण्डली-कोमलं स्तवम्। एतत् स्तोत्र-प्रसादेन, देवेषु गुरु - गीष्पतिः॥३॥
 सर्वे देवाः सिद्धि-युताः, अस्याः स्तोत्र-प्रसादतः। द्वि-पराद्धं चिरञ्जीवी, ब्रह्मा सर्व-सुरेश्वरः॥४॥
 त्वष्टाऽपि मम निकटे, स्थितो भगवती-पतिः। मां विद्धि परमां शक्तिं, स्थूल-सूक्ष्म-स्वरूपिणीम्॥५॥
 सर्व-प्रकाश-करिणीं, विन्ध्य - पर्वत-वासिनीम्। हिमालय - सुतां सिद्धां, सिद्ध-मन्त्र-स्वरूपिणीम्॥६॥
 सर्व-भूत - महा-बुद्धि-दायिनीं दानवापहाम्। स्थित्युत्पत्ति-लय-करीं, करुणा - सागर - स्थिताम्॥७॥
 ज्ञानदां बुद्धिदां ज्ञान-रत्न-माला-कला-पदाम्। सर्व-तेजः - स्वरूपाभामनन्त - कोटि - विग्रहाम्॥८॥
 दरिद्र-धनदां लक्ष्मीं, नारायण-मनोरमाम्। सदा भावय शम्भो! त्वं योग - नायक - पण्डित॥९॥
 कुल-मार्ग-स्थितो मन्त्री, सिद्धिमाप्नोति निश्चितम्। वीर-भाव-प्रसादेन, दिव्य - भावमाप्नुयात्॥१०॥
 दिव्यं - भावं वीर - भावं, ये गृह्णन्ति नरोत्तमाः। वाञ्छा-कल्पद्रुम-लता-पतयस्ते न संशयः॥११॥
 भाव - ग्रहण - मात्रेण, मम ज्ञानी भवेन्नरः। अवश्यं सिद्धिमाप्नोति, सत्यं सत्यं न संशयः॥१२॥
 ॥ रुद्र-यामले उत्तर-खण्डे कुण्डलिनी-स्तोत्रं॥

श्रीकुण्डलिनी-कवचं

॥श्रीआनन्द-भैरवी उवाच॥

अयं वक्ष्ये महा-देव! कुण्डली - कवचं शुभम्। परमानन्दं सिद्धं, सिद्ध-वृन्द-निषेवितम्॥१
यद् धृत्वा योगिनः सर्वे, धर्माधर्म-प्रदर्शकाः। ज्ञानिनो मानिनो धीरा, विचरन्ति यथा नराः॥२
सिद्धयोऽप्यणिमाद्याश्च, करस्थाः सर्व-देवताः। एतत् कवच-पाटेन, देवेन्द्रो योगि-राड् भवेत्॥३
ऋषयो योगिनः सर्वे, जटिलाः कुल-भैरवाः। प्रातःकाले त्रि-वारं च, मध्याह्ने वार-युग्मकम्॥४
सायाह्ने वारमेकं तु, पठेत् कवचमुत्तमम्। पाठादेव महा-योगी, कुण्डली-दर्शनं लभेत्॥५
विनियोग— ॐ अस्य श्रीकुल-कुण्डली-कवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः,
श्रीकुल-कुण्डली देवता, सर्वाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास— श्रीब्रह्मा-ऋषये नमः शिरसि, गायत्री-छन्दसे नमः मुखे, श्रीकुल-कुण्डली-
देवतायै नमः हृदि, सर्वाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

॥मूल कवच-पाठ॥

ॐ ईश्वरी जगद्धात्री, ललिता सुन्दरी परा। कुण्डली कुल-रूपा तु, पातु मां कुल-चण्डिका॥१
शिरो मे ललिता देवी, पातूग्राख्या कपोलकम्। ब्रह्म-रन्ध्रेण पुटिता, भूमध्यं पातु मे सदा॥२
नेत्र-त्रयं महा-काली, कालाग्नि-भक्षिका शिखां। दन्तावलीं विशालाक्षी, ओष्ठमिष्टान्न-वासिनी॥३
काम-बीजात्मिका विद्या, अधरं पातु मे सदा। लृ-युगस्या गण्ड-युग्मं, माया-बीजा रस-प्रिया॥४
भुवनेशी कर्ण - युग्मं, चिबुकं कनकेश्वरी। कपिला मे गलं पातु, सर्व-बीज-स्वरूपिणी॥५
मातृका-वर्ण-पुटिता, कुण्डली कण्ठमेव च। हृदयं काल-पुत्री च, कङ्काली पातु मे मुखम्॥६
भुज-युग्मं चण्ड-दुर्गा, चण्ड-दोर्दण्ड-खण्डिनी। स्कन्ध-युग्मं स्कन्द-माता, कपोलं क्रोध-कालिका॥७
अंगुल्यग्रं कुलानन्दा, श्रीविद्या नख-मण्डलम्। कालिका भुवनेशानी, पृष्ठ-देशं सदाऽवतु॥८
पार्श्व-युग्मं महा-वीरा, वीरासन - धराऽभया। पातु मां कुल-दर्भस्था, नाभिमुदरमम्बिका॥९
कटि-देशं पृष्ठ-संस्था, महा-महिष-घातिनी। लिङ्ग-स्थानं महा-मुद्रा, भग-माला मनु-प्रिया॥१०
भगीरथ - प्रिया धूम्रा, मूलाधारं गणेश्वरी। चतुर्दलं काम-विद्या, दलाग्रं मे वसुन्धरा॥११
धीर्धरा धारणाख्या च, ब्रह्माणी पातु मे मुखम्। मेदिनी पातु कमला, वागु-देवी पूर्वगं दलम्॥१२
छेदिनी दक्षिणे पार्श्वे, पातु चण्डा महा-तपा। चण्ड-घण्टा सदा पातु, योगिनी वारुणं दलम्॥१३
उत्तरस्थं दलं पातु, पृथिवीमिन्द्र-लालिता। चतुष्कोणं काम-विद्या, ब्रह्म-विद्याष्ट-कोणकम्॥१४
अष्ट-दलं सदा पातु, सर्व-वाहन-वाहना। चतुर्भुजा सदा पातु, डाकिनी कुल-चञ्चला॥१५
मेढ्रस्था मदनाधारा, पातु मे चारु-पङ्कजम्। स्वयम्भू-लिङ्गं चार्वङ्गी, कोटराक्षी ममासनम्॥१६
कदम्बं वनगा पातु, कदम्ब-वन-वासिनी। वैष्णवी परमा माया, पातु मे वैष्णवं पदम्॥१७
षड्-दलं राकिणी पातु, रङ्गिनी काम-वासिनी। कामेश्वरी काम-रूपा, कृष्णं मे पीत-वाससं॥१८
धनुः सा वन-दुर्गा मे, शङ्खं मे शङ्खिनी शिवा। चक्रं चक्रेश्वरी पातु, कमलाक्षी गदां मम॥१९
पद्मं मे पद्म-गन्धा च, पद्म-माला मनोहरा। वादि-लान्ताक्षरं पातु, लाकिनी लोक-पावनी॥२०

षड्-दले स्थित-देवांश्च, पातु कैलास-वासिनी। अग्नि-वर्णा सदा पातु, गलं मे परमेश्वरी॥२१
मणिपूरं सदा पातु, मणि-माला-विभूषणा। दश-पत्रं दश-वर्णं, डादि-फान्तं त्रि-विक्रमा॥२२
पातु नीला महा-काली, भद्रा भीमा सरस्वती। अयोध्या-वासिनी देवी, महा-पीठ-निवासिनी॥२३
वाग्भवाद्या महा-विद्या, कुण्डली काल-रूपिणी। दशच्छद-शतं पातु, रुद्रं रुद्रात्मकं ममा॥२४
सूक्ष्मा सूक्ष्म-तरा पातु, सूक्ष्म-स्थान-निवासिनी। राकिनी लोक-जननी, पातु कूटाक्षरान्विता॥२५
तैजसं पातु नियतं, रजकी राज-पूजिता। विजया कुल-वीजस्था, तवर्ग-तिमिरापहा॥२६
चन्द्रात्मिका मणि-ग्रन्थिं, भेदिनी पातु सर्वदा। भग-माला भृगु-सुता, पातु मां नाभि-वासिनी॥२७
नन्दिनी पातु सकलं, कुण्डली काल-कल्पिता। हत-पदं पातु कालाख्या, धूम्र-वर्णा मनोहरा॥२८
दल-द्वादश-वर्णं च, भास्करी भाव-सिद्धिदा। पातु मे परमा विद्या, क-वर्गं काम-चारिणी॥२९
च-वर्गं चारु-रसना, व्याघ्रास्या टङ्क-धारिणी। टकारं पातु कृष्णाख्या, हाकिनी पातु कालिका॥३०
ठंकुराङ्गी ठकारं मे, बीज-भाषा महोदया। ईश्वरं पातु विमला, मम हत-पद्म-वासिनी॥३१
कर्णिका काल-सन्दर्भा, योगिनी योग-मातरं। इन्द्राणी वारुणी पातु, कुल-माला कुलान्तरम्॥३२
तारिणी शक्ति-माता च, कण्ठ-वाक्यं सदाऽवतु। विप्र-चित्ता महोग्रोत्रा, प्रभा दीप्ता घनाऽमला॥३३
वाक्-स्तम्भिनी वज्र-देहा, वैदेही वृष-वाहिनी। उन्मत्तानन्द-चित्ता च, कुलेशी सा भगानुरा॥३४
मम षोडश-पत्राणि, पातु मातृ-तया स्थिता। सुरान् रक्षतु वेदज्ञा, सर्व-भाषा च कालिका॥३५
ईश्वरार्द्धासन-गता, प्रपायान्मे सदा-शिवा। शाकम्भरी महा-माया, शाकिनी पातु सर्वदा॥३६
भवानी भव-माता च, पायाद् भूमध्य-पङ्कजं। द्वि-दलं व्रत-कामाख्या, अष्टाङ्ग-सिद्धि-दायिनी॥३७
पातु मामखिलानन्दा, मनो-रूपा जप-प्रिया। लकारं लक्षणाक्रान्ता, सर्व-लक्षण-लक्षणा॥३८
कृष्णाजिन-धरा देवी, क्षकारं पातु सर्वदा। द्वि-दलस्थं सर्व-देवं, सदा पातु वरानना॥३९
बहु-रूपा विश्व-रूपा, हाकिनी पातु चण्डिका। हरा पर-शिवं पातु, मानसं पातु पञ्चमी॥४०
षट्-चक्रस्या सदा पातु, षट्-चक्र-कुल-वासिनी। अकारादि-क्षकारान्ता, विन्दु-सर्ग-समन्विता॥४१
मातृकार्णा सदा पातु, कुण्डली ज्ञान-कुण्डली। पूर्ण-काली गति-प्रेता, पूर्ण-गिरि-तटं शिवा॥४२
उड्डीयानेश्वरी देवी, सकलं पातु सर्वदा। कैलास-पर्वतं पातु कैलास-गिरि-वासिनी॥४३
डाकिनी राकिणी शक्तिर्लाकिनी काकिनी-कला। शाकिनी हाकिनी देवी, षट्-चक्रादीन् प्रपातु मे॥४४
कैलासाख्यं सदा पातु, पञ्चानन-तनूद्भवा। हिरण्य-वर्णा रजनी, चन्द्र-सूर्याग्नि-भक्षिणी॥४५
सहस्र - दल - पद्मं मे, सदा पातु कुलाकुला। सहस्र-दल-पद्मस्था, दैवतं पातु भैरवी॥४६
काली तारा षोडशाख्या, मातङ्गी पद्म-वासिनी। शशि-कोटि-गलद्-रूपा, पातु मे सकलां तनुम्॥४७
रणे घोरे जले दोषे, युद्धे वादे श्मशानके। सर्वत्र गमने ज्ञाने, सदा मां पातु शैलजा॥४८
पर्वते विविधावासे, विनाशे पातु कुण्डली। पादादि-ब्रह्म-रन्धान्तं, सर्वाकाशं सुरेश्वरी॥४९
सदा पातु सर्व-विद्या, सर्व-ज्ञानं सदा ममा। नव-लक्ष-महा-विद्या, दश-दिक्षु प्रपातु माम्॥५०

॥फल-श्रुति॥

इत्येतत्-कवचं देव! कुण्डलिन्याः प्रसिद्धिदा। ये पठन्ति ध्यान-योगे, योग-मार्ग-व्यवस्थिताः।
ते यान्ति मोक्ष-पदवीमैहिके नात्र संशयः॥१

॥रुद्र-यामले उत्तर-खण्डे कन्द-वामिनी-कवचं॥

कलि-दोष-विनाशक, सर्व-योग-समृद्धि-दायक
श्रीमहा-कुण्डली सहस्र-नाम-स्तोत्र

॥श्रीआनन्द-भैरवी उवाच॥

अथ कान्त! प्रवक्ष्यामि, कुण्डली-चेतनादिकं। सहस्र-नाम-सकलं, कुण्डलिन्याः प्रियं सुखं॥१
 अष्टोत्तरं महा-पुण्यं, साक्षात् सिद्धि-प्रदायकं। तव प्रेम-वशेनैव, कथयामि शृणुष्व तत्॥२
 बिना यजन-योगेन, बिना ध्यानेन यत्फलं। तत्फलं लभते सद्यो, विद्यायाः सु-कृपा भवेत्॥३
 या विद्या भुवनेशानी, त्रैलोक्य-परिपूजिता। सा देवी कुण्डली माता, त्रैलोक्यं पाति सर्वदा॥४
 तस्या नाम-सहस्राणि, अष्टोत्तर-शतानि च। श्रवणात् पठनात्मन्त्री, महा-भक्तो भवेदिह॥५

ऐहिके स भवेन्नाथ! जीवन्मुक्तो महा-बली॥६

अर्थात् कुण्डलिनी के ११०८ नामों को सुनने या पढ़ने मात्र से बिना पूजन, ध्यानादि के ही परम भक्त लोग त्रिलोक-पूजिता भुवनेश्वरी महा-विद्या की कृपा प्राप्त कर इस संसार में जीवन्मुक्त होकर सुख-पूर्वक रहते हैं। वह देवी कुण्डली माता तीनों लोकों की सदा रक्षा करती है।

विनियोग— अस्य श्रीमहा-कुण्डली-साष्टोत्तरशत-सहस्र-नाम-स्तोत्रस्य ब्रह्मा-ऋषिः, जगती छन्दः, भगवती श्रीमहा-कुण्डली देवता, सर्व-योग-समृद्धि-सिद्धयर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास— श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि। जगती-छन्दसे नमः मुखे। भगवती श्रीमहा-कुण्डली-देवतायै नमः हृदि। सर्व-योग-समृद्धि-सिद्धयर्थे पाठे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

अष्टोत्तरशत-नाम-साहस्रं

कुलेश्वरी कुलानन्दा, कुलीना कुल-कुण्डली। श्रीमन्महा-कुण्डली च, कुल-कन्या कुल-प्रिया॥
 कुल-क्षेत्र-स्थिता कौली, कुलीनार्थ-प्रकाशिनी। कुलाख्या कुल-मार्गस्या, कुल-शास्त्रार्थ-पातिनी॥
 कुलज्ञा कुल-योग्या च, कुल - पुष्प - प्रकाशिनी। सुकुलीना कुलाध्यक्षा, कुल-चन्दन-लेपिता॥
 कुल-गर्भासना कुल्ला, कुलच्छात्रा कुलात्मजा। कुलीना नाग-ललिता, कुण्डली कुल-पण्डिता॥
 कुल-द्रव्य-प्रिया कौला, कलि-कन्या कुलान्तरा। कुल-काली कुलामोदा, कुल-शब्दोत्सवाकुला॥
 कुल-रूपा कुलोद्भूता, कुल - कुण्डलि - वासिनी। कुलाभिन्ना कुलोत्पन्ना, कुलाचार-विनोदिनी॥
 कुल-दृक्ष-समुद्भूता, कुल-माला कुल-प्रभा। कुलज्ञा कुल - मध्यस्था, कुल-कङ्कण-शोभिता॥
 कुलोत्तरा कौल-पूजा, कुलालापा कुल-क्रिया। कुल-भेदा कुल-प्राणा, कुल-देवी कुल-स्तुतिः॥
 कौलिका कालिका काल्या, कलि-भिन्ना कलाकला। कलि-कल्मष-हन्त्री च, कलि-दोष-विनाशिनी॥
 कङ्काली केवलानन्दा, कालज्ञा काल-धारिणी। कौतुकी कौमुदी केका, काका काक-लयान्तरा॥

कोमलाङ्गी करालास्या, कन्द-पूज्या च कोमला। कैशोरी काक-पुच्छस्था, कम्बलासन-वासिनी॥
 कैकेयी-पूजिता कोला, कोल-पुत्री कपि-ध्वजा। कमला कमलाक्षी च, कम्बलाश्वतर-प्रिया॥
 कलिका-भङ्ग-दोषस्था, कालज्ञा काल-कुण्डली। काव्यदा कविता-वाणी, काल-सन्दर्भ-भेदिनी॥
 कुमारी करुणाकारा, कुरु-सैन्य-विनाशिनी। कान्ता कुलागता कामा, कामिनी काम-नाशिनी॥
 कामोद्भवा काम - कन्या, केवला काल - घातिनी। कैलास-शिखरारूढा, कैलास-पति-सेविता॥
 कैलास - नाथ - नमिता, केयूर - हार - मण्डिता। कन्दर्पा कठिनानन्दा, कुलगा कीच-कृत्यहा॥
 कमलास्या कठोरा च, कीट-रूपा कटि-स्थिता। कंदेश्वरी कंद-रूपा, कौलिका कंद-वासिनी॥
 कटकस्था काम-बीजा, कृच्छाकृच्छ-गुणोदया। कृच्छानन्दा कृच्छ-पूज्या, कृच्छहा कृच्छ-रक्षिका॥
 कारणांगी कृच्छ-वर्णा, कीलिता कोकिल-स्वरा। काञ्ची-पीठ-स्थिता काञ्ची, काम-रूप-निवासिनी॥
 कूटस्था कूट - भक्षा च, काल-कूट-विनाशिनी। कामाख्या कमला काम्या, कामराज-तनूद्भवा॥
 काम - रूप - धरा कम्पा, कमनीया कवि-प्रिया। कञ्जानना कञ्ज-हस्ता, कञ्ज-पत्रायतेक्षणा॥
 काकिनी काम-रूपस्था, काम-रूप-प्रकाशिनी। कोला-विध्वंसिनी कङ्का, कलङ्कार्क-कलङ्किनी॥
 महाकुल - नदी कर्णा, कर्ण-काण्ड-विमोहिनी। काण्डस्था काण्ड-करुणा, कर्मकस्था कुटुम्बिनी॥
 कमलाभा कल्पा कल्ला, करुणा करुणा-मयी। करुणेशी करा-कर्त्री, कर्तृ-हस्ता कलोदया॥
 कारुण्य-सागरोद्भूता, कारुण्य-सिन्धु-वासिनी। कार्तिकेशी कार्तिकस्था, कार्तिक-प्राण-पालिनी॥
 करुणा-निधि-पूज्या च, करणीया क्रिया कला। कल्पस्था कल्प-निलया, कल्पातीता च कल्पिता॥
 कुलपा कुल - विज्ञाना, कर्षिणी काल-रात्रिका। कैवल्यदा कोकरस्था, कल-मञ्जीर-रञ्जिनी॥
 कलयन्ती काल - जिह्वा, किङ्करासन-कारिणी। कुमुदा कुशलानन्दा, कौशल्याकाश-वासिनी॥
 कसापहास - हन्त्री च, कैवल्य - गुण-सम्भवा। एकाकिनी अर्क-रूपा, कुवला कर्कट-स्थिता॥
 कर्कोटका कोष्ठ - रूपा, कूट - वह्नि-कर-स्थिता। कूजन्ती मधुर-ध्वानं, कामयन्ती सुलक्षणा॥
 केतकी - कुसुमानन्दा, केतकी - पुष्प - मण्डिता। कर्पूर - पूर - रुचिरा, कर्पूर-भक्षण-प्रिया॥
 कपाल-पात्र-हस्ता च, कपाल-चन्द्र-धारिणी। कामधेनु - स्वरूपा च, कामधेनुः क्रियान्विता॥
 कश्यपी काश्यपा कुन्ती, केशान्ता केश-मोहिनी। काल-कर्त्री कूप-कर्त्री, कुलपा काम-चारिणी॥
 कुंकुमाभा कज्जलस्था, कमिता कोप-घातिनी। केलिस्था केलि-कलिता, कोपना कर्पट-स्थिता॥
 कलातीता काल-विद्या, कालात्म-पुरुषोद्भवा। कष्टस्था कष्ट-कुष्टस्था, कुष्टहा कष्टहा कुशा॥
 कलिका-स्फुट-कर्त्री च, काम्बोजा कामला कुला। कुशलाख्या काक-कुष्ठा, कर्मस्था कूर्म-मध्यगा॥
 कुण्डलाकार - चक्रस्था, कुण्ड - गोलोद्भवा कफा। कपित्थाग्र - वसाकाशा, कपित्य-रोध-करिणी॥
 काहोड़ी काहड़ा काड़ा, कङ्कला-भाष-कारिणी। कनका कनकाभा च, कनकाद्रि-निवासिनी॥

कार्पास - यज्ञ-सूत्रस्था, कूट-ब्रह्मार्थ-साधिनी। कलज्ज-भक्षिणी क्रूरा, क्रोध-पुञ्जा कपि-स्थिता॥
 कपाली-साधन-रता, कनिष्ठाकाश-वासिनी। कुञ्जरेणी कुञ्जरस्था, कुञ्जरा कुञ्जरा-गतिः॥
 कुञ्जस्था कुञ्ज-रमणी, कुञ्ज-मन्दिर-वासिनी। कुपिता कोप-शून्या च, कोपाकोप-विवर्जिता॥
 कपिञ्जलस्था कापिञ्जा, कपिञ्जल-तरुद्रवा। कुन्ती-प्रेम-कथाविष्टा, कुन्ती-मानस-पूजिता॥
 कुन्तला कुन्त-हस्ता च, कुल-कुन्तल-मोहिनी। कान्तांग्रि-सेविका कान्त-कुशला कोशलावती॥
 केशि-हन्त्री ककुत्स्था च, ककुत्स्थ-वन-वासिनी। कैलास-शिखरानन्दा, कैलास-गिरि-पूजिता॥
 कीलाल - निर्मलाकारा, कीलाल - मुग्ध-कारिणी। कुतुका कुट्टनी कुट्टा, कूटनामोद-कारिणी॥
 क्रौड्वारी क्रौड्वारी काशी, कुहु-शब्दस्था किरातिनी। कूजन्ती सर्व-वचनं, कारयन्ती कृताकृतं॥
 कृपा-निधि-स्वरूपा च, कृपा-सागर-वासिनी। केवलानन्द - निरता, केवलानन्द - कारिणी॥
 कृमिला कृमि-दोषघ्नी, कृपा कपट-कूडिता। कृशाङ्गी क्रम-भङ्गस्था, किङ्करस्था कट-स्थिता॥
 कान्त-रूपा कान्त-रता, काम-रूपस्य सिद्धिदा। काम-रूप-पीठ-देवी, काम-रूपांकुजा कुजा॥
 काम-रूपा काम-विद्या, काम-रूपादि-कालिका। काम-रूप-कला काम्या, काम-रूप-कुलेश्वरी॥
 काम - रूप - जनानन्दा, काम-रूप-कुशाग्र-धीः। काम-रूप-कराकाशा, काम-रूप-तरु-स्थिता॥
 कामात्मजा काम-कला, काम-रूप-विहारिणी। काम-शास्त्रार्थ-मध्यस्था, काम-रूप-क्रिया-कला॥
 काम - रूप - महा - काली, काम-रूप-यशो-मयी। काम-रूप-रमानन्दा, काम-रूपादि-कामिनी॥
 कुल-मूला काम - रूप-पद्म-मध्य - निवासिनी। कृताञ्जलि-प्रिया कृत्या, कृत्या-देवी-स्थिता कटा॥
 कटका काटका कोटि-कटि-घण्ट-विनोदिनी। कटि-स्थूल-तरा काष्ठा, कात्यायन-सु-सिद्धिदा॥
 कात्यायनी काचलस्था, काम-चन्द्रानना-कथा। काश्मीर-देश-निरता, काश्मीरी कृषि-कर्मजा॥
 कृषि-कर्म-स्थिता कौर्मा, कूर्म-पृष्ठ-निवासिनी। काल-घण्टा-नाद-रता, कल-मञ्जीर-मोहिनी॥
 कलयन्ती शत्रु - वर्गानु, क्रोधयन्ती गुणागुणं। कामयन्ती सर्व-कामं, काशयन्ती जगत्-त्रयं॥
 कौल-कन्या काल-कन्या, कौल-काल-कुलेश्वरी। कौल-मन्दिर-संस्था च, कुल-धर्म-विडम्बिनी॥
 कुल - धर्म - रताकारा, कुल-धर्म-विनाशिनी। कुल-धर्म-पण्डिता च, कुल-धर्म-समृद्धिदा॥
 कौल-भोग-मोक्षदा च, कौल-भोगेन्द्र-योगिनी। कौल-कर्मा नव-कुला, श्वेत-चम्पक-मालिनी॥
 कुल-पुष्प-माल्य-कान्ता, कुल - पुष्प - भवोद्भवा। कौल-कोल-हल-करा, कौल-कर्म-प्रिया-परा॥
 काशी-स्थिता काश-कन्या, काशी-चक्षु-प्रिया कुथा। काष्ठासन-प्रिया काका, काक-पक्षक-पालिका॥
 कपाल-रस-भोज्या च, कपाल-नव-मालिनी। कपालस्था च कापाली, कपाल-सिद्धि-दायिनी॥
 कपाला कुल-कर्त्री च, कपाल-शिखर-स्थिता। कथना कृपण-श्री-दा, कृपी कृपण-सेविता॥
 कर्म-हन्त्री कर्म - गता, कर्माकर्म-विवर्जिता। कर्म-सिद्धि-रता कामी, कर्म-ज्ञान-निवासिनी॥

कर्म - धर्म - सुशीला च, कर्म - धर्म - वशङ्करी। कनकाब्ज-सुनिर्माण-महा-सिंहासन-स्थिता॥
 कनक-ग्रन्थि-मात्याढ्या, कनक-ग्रन्थि-भेदिनी। कनकोद्भव-कन्या च, कनकाम्बोज-वासिनी॥
 काल - कूटादि - कूटस्था, किटि-शब्दान्तर-स्थिता। कङ्क-पक्षि-नाद-मुखा, काम-धेनूद्भवा कला॥
 कङ्कणाभा - धरा कर्दा, कर्दमा कर्दम-स्थिता। कर्दमस्थ-जलाच्छत्रा, कर्दमस्थ-जन-प्रिया॥
 कमठस्था कार्मुकस्था, कम्पस्था कंस-नाशिनी। कंस-प्रिया कंस-हन्त्री, कंसज्ञान-करालिनी॥
 काञ्चनाभा काञ्चनदा, कामदा क्रमदा कदा। कान्त-भिन्ना कान्त-चिन्ता, कमलासन-वासिनी॥
 कमलासन - सिद्धिस्था, कमलासन - देवता। कुत्सिता कुत्सित-रता, कुत्सा-शाप-विवर्जिता॥
 कुपुत्र - रक्षिका कुल्ला, कुपुत्र-मानसा-पहा। कुज-रक्ष-करी कौजी, कुब्जाख्या कुब्ज-विग्रहा॥
 कुनखी कूप-दिक्षुस्था, कुकरी कुधनी कुदा। कु-प्रिया कोकिलानन्दा, कोकिला काम-दायिनी॥
 कु-कामिनी कुबुद्धिस्था, कूर्प - वाहन - मोहिनी। कुलका कुल-लोकस्था, कुशासन-सिद्धिदा॥
 कौशिकी - देवता कस्या, कन्नाद-नाद-सुप्रिया। कु-सौष्टवा कु-मित्रस्था, कु-मित्र-शत्रु-घातिनी॥
 कु-ज्ञान-निकरा कुस्था, कुजिस्था कर्ज-दायिनी। कर्कजा कर्ज-कारिणी, कर्ज-वद्ध-विमोहिनी॥
 कर्ज-शोधन-कर्त्री च, कालास्त्र-धारिणी सदा। कु-गतिः काल-सुगतिः, कलि-बुद्धि-विनाशिनी॥
 कलि-काल-फलोत्पन्ना, कलि-पावन-कारिणी। कलि-पाप-हरा काली, कलि-सिद्धि-सु-सूक्ष्मदा॥
 कालिदास-वाक्य-गता, कालिदास-सु-सिद्धिदा। कलि-शिक्षा काल-शिक्षा, कन्द-शिक्षा-परायणा॥
 कमनीय - भाव - रता, कमनीय - सु - भक्तिदा। करकाजन-रूपा च, कक्षा-वाद-कराकरा॥
 कञ्चु-वर्णा काक-वर्णा, क्रोष्टु-रूपा कषामला। कोष्ट-नाद-रता कीता, कातरा कातर-प्रिया॥
 कातरस्था कातराज्ञा, कातरानन्द - कारिणी। काश - मर्द - तरुद्भूता, काश-मर्द-विभक्षिणी॥
 कष्ट-हानिः कष्ट-दात्री, कष्ट-लोक-विरक्तिदा। काया-गता काय-सिद्धिः, कायानन्द-प्रकाशिनी॥
 काय-गन्ध-हरा कुम्भा, काय-कुम्भा कटोरिणी। कटोर-तरु-संस्था च, कटोर-लोक-नाशिनी॥
 कुमार्ग - स्थापिता कुप्रा, कार्पास-तरु-सम्भवा। कार्पास - वृक्ष-सूत्रस्था, कु-वर्गस्था करोत्तरा॥
 कर्णाट-कर्म-सम्भूता, कार्णाटी कर्ण-पूजिता। कर्णास्त्र-रक्षिका कर्णा, कर्णहा कर्ण-कुण्डला॥
 कुन्तलादेश - नमिता, कुटुम्बा कुम्भ-कारिका। कर्णास-रासना कृष्टा, कृष्ण-हस्ताम्बुजार्जिता॥
 कृष्णाङ्गी कृष्ण-देहस्था, कु-देशस्था कु-मङ्गला। क्रूर-कर्म-स्थिता कोरा, किरात-कुल-कामिनी॥
 काल-वारि-प्रिया कामा, काव्य-वाक्य-प्रिया कुधा। कज्ज-लता कौमुदी च, कु-ज्योत्स्ना कलन-प्रिया॥
 कलना सर्व-भूतानां, कपित्थ-वन-वासिनी। कटु-निम्ब-स्थिता काख्या, क-वर्गाख्या क-वर्गिका॥
 किरातच्छेदिनी कार्या, कार्याकार्य - विवर्जिता। कात्यायनादि - कल्पस्था, कात्यायन-सुखोदया॥
 कु-क्षेत्रस्था कुलाविघ्ना, करणादि - प्रवेशिनी। काङ्गाली किङ्कला काला, कीलिता-सर्व-कामिनी॥
 कीलितापेक्षिता कूटा, कूट - कुङ्कुम - चर्चिता। कुङ्कुमागन्ध-निलया, कुटुम्ब-भवन-स्थिता॥

कुं - कृपा - कारणानन्दा, कविता - रस-मोहिनी। काव्य-शास्त्रानन्द-रता, काव्य-पूज्या कवीश्वरी॥
 कटकादि - हस्ति - रथ-हय-दुन्दुभि-शब्दिनी। कितवा क्रूर-धूर्तस्था, केका-शब्द-निवासिनी॥
 के-केवलाम्बिता केता, केतकी - पुष्प - मोहिनी। के - कैवल्य-गुणोद्भास्या, कैवल्य-धन-दायिनी॥
 करी - धनीन्द्र - जननी, काक्षताक्ष-कलङ्किनी। कुडुवान्ता कान्ति-शान्ताकांक्षा-पारम-हंस्यगा॥
 कर्त्री-चित्ता कान्त-वित्ता, कृषणा कृषि-भोजिनी। कुंकुमासक्त - हृदया, केयूर - हार-मालिनी॥
 कीश्वरी केशवा कुम्भा, केशोर-जन-पूजिता। कालिका-मध्य-निरता, कोकिल-स्वर-गामिनी॥
 कुर-देह-हरा कुम्बा, कुडुम्बा कुर - मेदिनी। कुण्डलीश्वर - संवादा, कुण्डलीश्वर-मध्यगा॥
 काल-सूक्ष्मा काल - यज्ञा, काल-हार-करी कहा। कहलस्था कलहस्था, कलहा कलहङ्करी॥
 कुरङ्गी-श्री कुरङ्गस्था, कोरङ्गी कुण्डलापहा। कुल-लक्ष्मीः कृष्ण-बुद्धिः, कृष्णा-ध्यान-निवासिनी॥
 कुतवा काष्ठव - लता, कृतार्थ-करणी कुसी। कनकस्था क-स्वरस्था, कलिका-दोष-भङ्गा॥
 कुसुमाकार - कमला, कुसुम-स्रग्-विभूषणा। किंजल्का कैतवाकाशा, कमनीय - जालोदया॥
 ककार - कूट - सर्वाङ्गी, ककाराम्बर - मालिनी। काल-भेद-करा काटा, कर्प-वासा ककुत्स्थला॥
 कुवासा कबरी कर्वा, कूसवी कुरु-पालिनी। कुरु-पृष्ठा कुरु-श्रेष्ठा, कुरुणां ज्ञान-नाशिनी॥
 कुतूहल - रता कान्ता, कु-व्याप्ता कष्ट-बन्धना। कषायण - तरुस्था च, कषायण-रसोद्भवा॥
 कवि-विद्या कुष्ट-हन्त्री, कुष्ट-शोक - विसर्जनी। काष्ठासन-गता कार्याश्रया काश्रय - कौलिका॥
 कालिका कालि-संन्रस्ता, कौलिक-ध्यान-वासिनी। क्लृप्तस्था क्लृप्त-जननी, क्लृप्तच्छत्रा कलि-ध्वजा॥
 केशवा केशवानन्दा, केश्यादि - दानवापहा। केशवाङ्गज - कन्या च, केशवाङ्गज-मोहिनी॥
 किशोरार्चन - योग्या च, किशोर - देव - देवता। कान्तश्री-करणी कुल्या, कपटाप्रिय-घातिनी॥
 कु-काम-जनिता कौञ्चा, कौञ्चस्था कौञ्च-वासिनी। कूपस्था कूप-बुद्धिस्था, कूप-माला मनोरमा॥
 कुल-पुष्पाश्रया कान्तिः, क्रमदाक्रमदा क्रमा। कु-विक्रमा कु-क्रमस्था, कुण्डली कुण्ड-देवता॥
 कौण्डिल्य - नगरोद्भूता, कौण्डिल्य-गोत्र-पूजिता। कपिराज-स्थिता कापी, कपि-बुद्धि-बलोदया॥
 कपि-ध्यान-परा-मुख्या, कु-व्यवस्था कु-साक्षिदा। कु-मध्यस्था कु-कल्पा च, कुल-पंक्ति-प्रकाशिनी॥
 कुल - भ्रमर - देहस्था, कुल-भ्रमर-नादिनी। कुलासङ्गा कुलाक्षी च, कुल-मत्ता कुलानिला॥
 कलि-चिह्ना काल-चिह्ना, कण्ठ-चिह्ना कवीन्द्रजा। करीन्द्रा कमलेश-श्रीः, कोटि-कन्दर्प-दर्पहा॥
 कोटि-तेजो-मयी कोट्या, कोटीर-पद्म-मालिनी। कोटीर-मोहिनी कोटिः, कोटि-कोटि-विधूद्भवा॥
 कोटि - सूर्य - समानास्या, कोटि - कालानलोपमा। कोटीर-हार-ललिता, कोटि-पर्वत-धारिणी॥
 कुल-युग्म-धरा-देवी, कुच-काम - प्रकाशिनी। कुचानन्दा कुचाच्छत्रा, कुच-काठिन्य-कारिणी॥
 कुच - युग्म - मोहनस्था, कुच-मायातुरा कुचा। कुच-यौवन-सम्मोहा, कुच-मर्दन-सौख्यदा॥
 काचस्था काच-देहा च, काच-पूर-निवासिनी। काचग्रस्था काच-वर्णा, कीचक-प्राण-नाशिनी॥
 कमला - लोचन - प्रेमा, कोमलाक्षी-मनु-प्रिया। कमलाक्षी कमलजा, कमलास्या करालजा॥

कमलाग्नि - दया काम्या, कराख्या कर-मालिनी। कर-पद्म-धरा कन्दा, कन्द-बुद्धि-प्रदायिनी॥
 कमलोद्भव - पुत्री च, कमला-पुत्र-कामिनी। किरन्ती किरणाच्छत्रा, किरण - प्राण-वासिनी॥
 काव्य-प्रदा काव्य-चित्ता, काव्य-सार-प्रकाशिनी। कलाम्बा कल्प-जननी, कल्प-मेदासन-स्थिता॥
 कालेच्छा काल - सारस्था, काल-मारण-घातिनी। किरण-क्रम-दीपस्था, कर्मस्था क्रम-दीपिका॥
 काल-लक्ष्मीः काल-चण्डा, कुल-चण्डेश्वर-प्रिया। काकिनी-शक्ति-देहस्था, कितवा किंत-कारिणी॥
 करञ्चा कञ्चुका कौञ्चा, काक-चंचु-पुट-स्थिता। काकाख्या काक-शब्दस्था, कालाग्नि-दहनार्थिका॥
 कुचक्ष - निलया कुत्रा, कुपुत्रा क्रतु - रक्षिका। कनक-प्रतिमाकारा, कर-बन्धाकृति-स्थिता॥
 कृति-रूपा कृति-प्राणा, कृति-क्रोध-निवारिणी। कुक्षि-रक्षा-करा कुक्षा, कुक्षि-ब्रह्माण्ड-धारिणी॥
 कुक्षि-देव-स्थिता कुक्षिः, क्रिया-दक्षा क्रियातुरा। क्रिया-निष्ठा क्रियानन्दा, क्रतु-कर्मा क्रिया-प्रिया॥
 कुशलासवा - संसक्ता, कुशारि - प्राण - वल्लभा। कुशारि-वृक्ष-मदिरा, काशी-राज-वशोद्यमा॥
 काशी-राज-गृहस्था च, कर्तृ-भ्रातृ-गृह-स्थिता। कर्णाभरण - भूषाढ्या, कण्ठ-भूषा च कण्ठिका॥
 कण्ठ-स्थान-गता कण्ठा, कण्ठ-पद्म-निवासिनी, कण्ठ-प्रकाश-करिणी, कण्ठ-माणिक्य-मालिनी॥
 कण्ठ-पद्म-सिद्धि-करी, कण्ठाकाश - निवासिनी। कण्ठ-पद्म-साकिनीस्था, कण्ठ-षोडश-पत्रिका॥
 कृष्णाजिन - धरा - विद्या, कृष्णाजिन-सु-वासिनी। कुतकस्था कुखेलस्था, कुण्डबालंकृताकृता॥
 कल-गीता काल-ध्वजा, कल-भङ्ग-परायणा। काली-चन्द्रा कला काव्या, कुचस्था कुचल-प्रदा॥
 कु-चौर-घातिनी कच्छा, कच्छादस्था कजातना। कंजा-छद-मुखी कंजा, कंज-तुण्डा कजीवनी॥
 काम-राजीव-रवाद्यस्था, कियद्-हुङ्गार-नादिनी। कणाद-यज्ञ-सूत्रस्था, कीलालमज्ञ - संज्ञका॥
 कटि - हासा कपाटस्था, कटु-धूम-निवासिनी। कटि-नाद-घोर-तरा, कुट्टला-पाटलि-प्रिया॥
 कामचाराब्ज - नेत्रा च, कामचोद्गार-संक्रमा। काष्ठ-पर्वत-सन्दाहा, कष्टाकष्ट - निवारिणी॥
 कहोड-मन्त्र-सिद्धस्था, काहला - डिण्डिम - प्रिया। कुल-डिण्डिम-वाद्यस्था, काम-डामर-सिद्धिदा॥
 कुलतामर - मध्यस्था, कुल-केका-निनादिनी। कोजागर-ढोल-नादा, कास्य-वीर - रण - स्थिता॥
 कालादि - करणच्छिद्रा, करुणा-निधि-वत्सला। क्रतु-श्री-दा कृतार्थ-श्रीः, काल-तारा कुलोत्तरा॥
 कथा-पूज्या कथानन्दा, कथना कथन-प्रिया। कार्य-चिन्ता कार्य-विद्या, काम-मिथ्यापवादिनी॥
 कदम्ब-पुष्प-सङ्काशा, कदम्ब-पुष्प-मालिनी। कादम्बरी-पान-तुष्टा, काय - दम्भा कदोद्यमा॥
 कंकुले-पत्र-मध्यस्था, कुलाधार-धरा-प्रिया। कुल-देव-शरीरार्धा, कुल - धामा कला-धरा॥
 काम-राग-भूषणाढ्या, कामिनीरगुण - प्रिया। कुलीन-नाग-हस्ता च, कुलीन-नाग-वाहिनी॥
 काम-पूर-स्थिता कोपा, कपाली - बन्दनोद्भवा। कारागार-जना-पाल्या, कारागार-प्रपालिनी॥
 क्रिया-शक्तिः काल-पंक्तिः, कर्ण-पंक्तिः कफोदया। काम-फुल्लारविन्दस्था, काम-रूप-फलाफला॥
 काय-फला काय-फेणा, कान्ता नाडी-फलीश्वरा। काम-फेरु-गता-गौरी, काय-वाणी कुवीरगा॥
 कबरी-मणि-बन्धस्था, कावेरी-तीर्थ-सङ्गमा। काम-भीति-हरा कान्ता, काम-वाकु-भ्रमातुरा॥

कवि-भाव-हरा-भामा, कमनीय-भया-पहा। काम-गर्भ-देव-माता, काम - कल्प - लतामरा॥
 कमठ-प्रिय-मांसादा, कमठा कामठ-प्रिया। किमाकारा किमाधारा, कुम्भ-कार-मन-स्थिता॥
 काम्य-यज्ञ-स्थिता-चण्डा, काम-यज्ञोपवीतिका। काम-यज्ञ-सिद्धि-करी, काम-मैथुन-यामिनी॥
 कामाख्या-यम-लासस्था, काल - यामा कु-योगिनी। कुरु-याग-हतायोग्या, कुरु-मांस-विभक्षिणी॥
 कुरु-रक्त-प्रियाकारी, किङ्कर-प्रिय-कारिणी। कर्त्रीश्वरी कारणात्मा, कवि-भक्षा कवि-प्रिया॥
 कवि-शत्रु-प्रष्ट-लग्ना, कैलासोपवन - स्थिता। कलि-त्रिधा-त्रि-सिद्धिस्था, कलि-त्रिदिन-सिद्धिदा॥
 कलङ्क - रहिता काली, कलि - कल्मष - कामदा। कुल-पुष्प-रङ्ग-सूत्र-मणि-ग्रन्थि-सुशोभना॥
 कम्बोज-वङ्ग-देशस्था, कुल-वासुकि-रक्षिका। कुल-शास्त्र-क्रिया-शान्तिः, कुल-शान्तिः कुलेश्वरी॥
 कुशल-प्रतिभा काशी, कुल-षट्-चक्र-भेदिनी। कुल-षट्-पद्म-मध्यस्था, कुल-षट्-पद्म-दीपिनी॥
 कृष्ण-मार्जार-कोलस्था, कृष्ण - मार्जार - षष्टिका। कुल-मार्जार-कुपिता, कुल-मार्जार-घोडशी॥
 कालान्त-कवलोटपत्रा, कपिलान्तक-घातिनी। कल-हासा कालह-श्री, कहलार्था कलामला॥
 कक्षप - पक्ष - रक्षा च, कुक्षेत्र-पक्ष-संक्षया। काक्ष-रक्षा-रक्षिणी च, महा-मोक्ष-प्रतिष्ठिता॥
 अर्क-कोटि-शतच्छाया, आन्वीक्षि - किंकरार्चिता। कावेरी-तीर-भूमिस्था, आग्नेयार्कास्त्र-धारिणी॥
 इं किं श्रीं काम-कमला, पातु कैलास-रक्षिणी। मम श्री ई-बीज-रूपा, पातु काली शिर-स्थलम्॥
 उरु-स्थलाब्जं सकलं, तमोल्का पातु कालिका। उडू-मूलार्क-रमणी, उष्टोग्रा कुल-मातृका॥
 कृतापेक्षा कृत-मती, कुङ्करी किं-लिपि-स्थिता। कुं-दीर्घ-स्वरा क्नुमा, के-कैलास-करार्चिका॥
 कैशोरी कैं करी कैं कैं, वीजाख्या नेत्र-युग्मकं। कोमा-मतङ्ग-यजिता, कौशल्यादि-कुमारिका॥
 पातु मे कर्ण-युग्मं तु, क्रौं क्रौं जीव-करालिनी। गण्ड-युग्मं सदा पातु, कुण्डली-स्वाङ्क-वासिनी॥
 अर्क-कोटि-शताभासां, अक्षराक्षर - मालिनी। आशु-तोष-करी हस्ता, कुल-देवी निरञ्जना॥
 पातु मे कुल-पुष्पाढ्या, पृष्ठ-देशं सुकृत-तमा। कुमारी कामना-पूर्णा, पार्श्व-देशं सदाऽवतु॥
 देवी कामाख्यका देवी, पातु प्रत्यङ्गिरा कटिं। कटिस्थ-देवता पातु, लिङ्ग-मूलं सदा मम॥
 गुह्य-देशं काकिनी मे, लिङ्गाधः कुल-सिंहिका। कुल-नागेश्वरी पातु, नितम्ब-देशमुत्तम॥
 कङ्काल - मालिनी देवी, मे पातु चोरु-मूलकं। जङ्घा-युग्मं सदा कीर्तिः, चक्रापहारिणी॥
 पाद-युग्मं पाक-संस्था, पाक - शासन - रक्षिका। कुलाल-चक्र-भ्रमरा पातु, पादाङ्गुलीर्मम॥
 नखाग्राणि दश - विधा, तथा हस्त - द्वयस्य च। विंश-रूपा कालनाक्षा, सर्वदा परि-रक्षतु॥
 कुलच्छत्राधार - रूपा, कुल-मण्डल-गोपिता। कुल-कुण्डलिनी-माता, कुल-पण्डित-मण्डिता॥
 काकानना काक-तुण्डी, काकायुः-प्रखरार्कजा। काक-ज्वरा काक-जिह्वा, कपि-क्रोधासन-स्थिता॥
 कपि-ध्वजा कपि-क्रोशा, कपि-बाला कपि-स्वरा। काल-काञ्ची-विंशतिस्था, सदा-विंश-नखाग्रहं॥
 पातु देवी काल-रूपा, कलि-काल-फलालया। वाते वा पर्वते वापि, शून्यागारे चतुष्पथे॥
 कुलेन्द्र - समयाचारा, कुलाचार - जन - प्रिया। कुल-पर्वत-संस्था च, कुल-कैलास-वासिनी॥

महा-दावानले पातु, कुमार्गे कुत्सिताग्रहे। राज्ञोऽप्रिये राज-वश्ये, महा-शत्रु-विनाशने॥
 कलि-काल-महालक्ष्मीः, क्रिया-लक्ष्मीः कुलाम्बरा। कवीन्द्र-कीलिता कीला, कीलाल-स्वर्गवासिनी॥
 दश - दिक्षु सदा पातु, इन्द्रादि-दश-लोकपा। नवच्छिन्ने सदा पातु, सूर्यादिक-नव-ग्रहाः॥
 पातु मां कुल-मांसाढ्या, कुल-पद्म-निवासिनी। कुल-द्रव्य-प्रिया मध्या, षोडशी भुवनेश्वरी॥
 विद्या - वादे विवादे च, मत्त - काले महा-भये। दुर्भिक्षादि-भये चैव, व्याधि-सङ्कर-पीडिते॥
 काली-कुल्ला कपाली च, कामाख्या काम-चारिणी। सदा मां कुल-संसर्गे, पातु कौले सु-सङ्गता॥
 सर्वत्र सर्व - देशे च, कुल - रूपा सदाऽवतु। इत्येतत् कथितं नाथ! मातुः प्रसाद-हेतुना॥
 अष्टोत्तर - शतं नाम - सहस्रं कुण्डली-प्रियां कुल-कुण्डलिनी-देव्याः, सर्व-मन्त्र-सुसिद्धये॥

॥फल-श्रुति॥

सर्व - देव - मनूनां च, चैतन्याय सु-सिद्धये। अणिमाद्यष्ट-सिद्ध्यर्थं साधकानां हिताय च॥
 ब्राह्मणाय प्रदातव्यं, कुल-द्रव्य-पराय च। अकुलीनेऽब्राह्मणे च, न देयः कुण्डली-स्तवः॥
 प्रवृत्ते कुण्डली-चक्रे, सर्वे वर्णा द्विजातयः। निवृत्ते भैरवी-चक्रे, सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥
 कुलीनाय प्रदातव्यं, साधकाय विशेषतः। दानादेव हि सिद्धिः स्यान्ममाज्ञा-बल-हेतुना॥
 मम क्रियायां यः तिष्ठेत्, स मे पुत्रो न संशयः। स आयाति मम पदं, जीवन्मुक्तः स मानवः॥
 आसवेन स - मांसानि, कुल-बह्वौ महा-निशि। नाम प्रत्येकमुच्चार्य, जुहुयात् कार्य-सिद्धये॥
 पञ्चाचार-रतो भूत्वा, ऊर्ध्व-रेता भवेद् यतिः। सम्बत्सरान्मम स्थाने, आयाति नात्र संशयः॥
 ऐहिके कार्य-सिद्धिः स्यात्, दैहिके सर्व-सिद्धिदः। वशी भूत्वा त्रि-मार्गस्थाः, स्वर्ग-भूतल-वासिनः॥
 अस्य भृत्याः प्रभवन्ति, इन्द्रादि-लोक-पालकाः। स एव योगी परमो, यस्यार्थेऽयं सु-निश्चलः॥
 यो लोकः प्रजपत्येवं, स शिवो न च मानुषः। स समाधि-गतो नित्यो, ध्यानस्थो योगि-वल्लभः॥
 चतुर्व्यूह-गतो देवः, सहसा नात्र संशयः। यः प्रधारयते भक्त्या, कण्ठे वा मस्तकं भुजे॥
 स भवेत् कालिका-पुत्रो, विद्या-नाथः स्वयं भुवि। धनेशः पुत्रवान् योगी, यतीशः सर्वगो भवेत्॥
 यदि पठति मनुष्यो मानुषी वा महत्या। सकल - धन - जनेशी पुत्रिणी जीव - वत्सा॥

कुल-पतिरिह लोके, स्वर्ग-मोक्षैक-हेतुः। स भवति भव-नाथो योगिनी-वल्लभेशः॥

पठति य इह नित्यं भक्ति-भावेन मर्त्यो। हरणमपि करोति प्राण-विप्राण-योगः॥

स्तवन-पठन-पुण्यं कोटि-जन्माघ-नाशं। कथितुमपि न शक्तोऽहं महा-मांस-भक्ष्वा॥

॥श्रीरुद्र-यामले महा-कुल-कुण्डलिनी अष्टोत्तर-सहस्र-नाम-स्तोत्रम्॥

ध्यात्वा कुल-कुण्डलिनी....

★ पण्डित श्री बलराम शास्त्री

[१] 'कुण्डलिनी'

॥ नौमि तडित्-पुञ्जाभ्र-पिङ्ग-सञ्चाराम् ॥

आयान्तीं कुण्डलीं शुष्मणा-सरणिर्मध्य-प्रसाराम्,

लूता - तन्तु - तता - तनीयसीं हैम - विद्युदाकाराम्।

सार्द्ध - त्रिवलयाकारां गुञ्जन्मधुरोलंब-विहाराम्,

श्वासोच्छ्वास-क्रमेण प्राणदां, 'स्वयम्भु-लिङ्ग'-प्राकाराम् ॥ १ ॥

* *

[२] 'मूलाधार'

॥ वन्दे वर्णाम्नाय-स्वरूपाम् ॥

मूल-चतुष्के वेद-दलाङ्कित 'वँ शँ षँ सँ'-रूपाम्,

तत्र त्रिकोणे, मदनागारे, धराधार 'लँ'-भूषाम्।

सौवर्णाभामुद्यद्भास्कर-भास्वर - ब्रह्म-स्वरूपाम्,

गज-मुख-लसितां चैन्द्र-दैवतां 'डाकिन्याञ्जित'-रूपाम् ॥ २ ॥

* *

[३] 'स्वाधिष्ठान'

॥ वन्दे सर्वाम्नाय-प्रतिष्ठाम् ॥

'बँ भँ मँ यँ रँ लँ'-वर्णा षड्-दल-स्वाधिष्ठानमधिष्ठाम्,

सिन्दूरारुण - लसदरविन्दे 'बँ' - कारे मकरस्थाम्।

नीरद-नील-कलेवर-केशव - श्रीवत्साङ्ग - विशिष्टाम्,

नानाभरणायुधा सुनीला 'राकिणी'-शक्तिमधिष्ठाम् ॥ ३ ॥

[४] 'मणिपुर'

॥ नौमि सुरासुर-स्वान्त-प्रविष्टाम् ॥

'डं ढं णं, तं थं दं धं नं, पं फं'-चित्रित-वर्ण-विशिष्टाम्,

दिग्-दल - मध्ये मणिपूरस्थां 'रँ'-चतुरस्रमधिष्ठाम्।

भस्म - विलिप्ताङ्गस्य पुरारेवृद्धस्यात्र प्रतिष्ठाम्,

ध्यायेन्मन्त्री लोक-शङ्करी 'लाकिनी'-शक्तिरवस्थाम् ॥ ४ ॥

* *

[५] 'अनाहत'

॥ नौमि प्राणदां हृदि कमलस्थाम् ॥

'कँ खँ गँ घँ ङँ, चँ छँ जँ झँ ञँ, टँ ठँ' वर्ण-व्यवस्थाम्,

तरुणादित्य - दलामनाहते किञ्जल्के 'यँ'-निष्ठाम्।

तत्र सुरासुर - वन्दितेश्वरे सार्द्ध - चन्द्र - शून्यस्थाम्,
सुधा-स्यन्दि-कङ्काल-मालिनी 'काकिनी' - शक्ति-मतिस्थाम् ॥५॥

* *

[६] 'विशुद्ध'

॥ प्रणमामि वियदखिलाधाराम् ॥

'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं, लृं लृं एं ऐं ओं औं अः' स्वर-सन्दीप्ते,
पूर्ण - शशांके, भास्वर - वृत्ताकाराम्।
हं खं बीजे सदाशिवस्य गिरिजाभिन्न-विहाराम्,
कण्ठ-विशुद्धे सुधया धवला 'शाकिनी' - शक्त्याधारां ॥६॥

* *

[७] 'आज्ञा'

॥ प्रणमामि मनसाऽप्यविचाराम् ॥

भू-मध्ये द्वि-दलेऽप्यवदाते 'हं क्षं' - वर्णाकाराम्,
आज्ञा-चक्रे शशि-सम-शुभ्रा 'हाकिनी' - शक्तिमपाराम्।
इतराख्ये शिव-लिङ्गे विलसति प्रणवे जगदाधाराम्,
विद्युद् - दीप्ते तत्र त्रिकोणे, ध्यायेद् ब्रह्म-विहाराम् ॥७॥

* *

[८] 'सहस्रार'

॥ दश-शत-दलं भजे साकारम् ॥

तेजो-मयं पद्मावदातं शिरसि च ज्ञानाधारम्,
आदि-क्षान्त-पंचाशद्-वर्णैः परमानन्द-विहारम्।
परमामृतेन श्लक्ष्णं शुभ्रं चन्द्र-मण्डलाधारम्,
विद्युद्-दीपितमर्ण-त्रयोपरि शून्यं बिन्द्वागारम् ॥८॥

* *

[९] 'फल-श्रुति'

॥ ध्यात्वा कुल-कुण्डलिनीं योगी ॥

परमानन्द-समाधौ मग्नः, भवति च विश्व-वियोगी।
नीरुज-कान्त-शरीरं लब्ध्वा, परमामृत - सम्भोगी॥
वाग्वादिन्या प्राप्य प्रसादं, सृजति काव्य-शत-कोटीः।
ब्रह्मणि लीनः सुखमासीनः, भवति कल्प-शत-योगी ॥९॥

* * *

‘कुण्डलिनी’-जागरण

- ‘कुल-वाणी-रत्न’ श्रीराजेन्द्रकुमार अवस्थी, २ ज-१० हिरणमगरी, उदयपुर (राजस्थान)

हमारे शरीर में स्थित सात केन्द्रों (१ मूलाधार चक्र, २ स्वाधिष्ठान चक्र, ३ मणिपुर-चक्र, ४ अनाहत-चक्र, ५ विशुद्ध-चक्र, ६ आज्ञा-चक्र, ७ सहस्रार-चक्र) के जागृत होने पर हमारे शरीर की अवस्थाओं में भी उत्तरोत्तर गति होती है। शरीर की अवस्थाओं की उत्तरोत्तर गति को हम क्रमशः — (१) स्थूल-शरीर, (२) भाव या वासना-शरीर, (३) सूक्ष्म-शरीर, (४) कारण-शरीर, (५) आत्मिक-शरीर, (६) ब्रह्म-शरीर, (७) निर्वाण-शरीर के नामों से जानते हैं। इनमें क्रमाङ्क (१) से (४) ‘जीवात्मा’ से सम्बन्धित शरीर हैं और क्रमाङ्क (५) से (७) ‘शुद्ध आत्मा’ से सम्बन्धित शरीर हैं। सात शरीरों के अनुरूप सात लोक भी हैं, यथा—(१) भू-लोक, (२) पितृ-लोक, (३) सूक्ष्म-लोक, (४) मनः-लोक, (५) आत्म-लोक, (६) ब्रह्म-लोक और (७) निर्वाण-लोक।

इस प्रकार ‘कुण्डलिनी-जागरण’ की उक्त प्रक्रिया आन्तरिक जागरण व रूपान्तरण की शुद्ध वैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रिया है, जो जन्म-जन्मान्तरों से चलती रहती है। ‘मृत्यु से अमृत की ओर’, ‘असत् से सत् की ओर’ चलना हमारी ‘आत्मा’ का स्वभाव है। ‘आत्मा’ के इस स्वभाव के कारण ही हम लोग साधना, पूजा-पाठ के प्रति आकर्षित होते हैं। साधना, पूजा-पाठ द्वारा ‘आत्मा’ को अति तीव्रता से उसके मूल लक्ष्य ‘निर्वाण-शरीर’ तक ले जा सकते हैं।

‘कुण्डलिनी-जागरण’ की साधनाएँ प्रमुख रूप से ‘आसन, प्राणायाम, ध्यान’ और ‘समाधि’ से सम्बन्धित हैं। साधना की गति ‘श्रद्धा’-रूपी ईधन पर निर्भर है। ‘श्रद्धा’ के लिए ‘पूर्ण समर्पण’ आवश्यक है। स्वयं को साध्य में विलीन कर देना ही— ‘समर्पण’ है। दूसरे शब्दों में, ‘स्वयं को निमित्त मात्र मानना और मैं नहीं वह’, ‘अपने लिए नहीं, उसकी इच्छा के लिए’, ‘उसकी इच्छा ही मेरी इच्छा’, ‘मेरा कुछ नहीं’, जो है वह उसका है’ आदि भाव बनाए रखना ही ‘श्रद्धा’ है।

मानव-शरीर में ‘मेरु-दण्ड’ बहुत ही महत्त्व-पूर्ण अङ्ग है। ‘मेरु-दण्ड’ हड्डियों के छोटे-छोटे ८४ टुकड़ों से बना है। विद्वज्जनों के अनुसार ये ८४ टुकड़े, ८४ लाख योनियों से सम्बन्धित हैं। ‘मेरु-दण्ड’ के निचले भाग में गति-शील और ऊपरी भाग में स्थिति-शील ‘ऊर्जा’— ‘शक्ति एवं शिव-तत्त्व’ स्थित हैं। दोनों के मध्य में ‘चक्र’ हैं। ‘चक्र’ वे केन्द्र हैं, जहाँ ‘ऊर्जा’ का विपुल भण्डार है। ‘कुण्डलिनी’ वह जीवनी-शक्ति है, जिसके द्वारा ‘चक्र’ क्रमशः जाग्रत होते हैं और हम भीतर सूक्ष्म में प्रवेश करते हैं। ‘ध्यान और जप’ वे साधन हैं, जिनके द्वारा बाह्य जगत् से अन्तर्जगत् में जाते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक जीव में कोई-न-कोई (एक या एकाधिक) ‘चक्र’ सक्रिय होता है। यह जान लेने पर कि हमारा या अन्य का कौन-सा ‘चक्र’ सक्रिय है, स्वयं के या अन्य के अन्तःकरण को जानने-समझने में सरलता होती है। साथ ही, हमें आगे बढ़ने का मार्ग भी

मिल जाता है। जब तक हमें यह ज्ञात नहीं हो पाता, तब तक हमें 'साधना' में असफलता मिलती है। अतः 'साधना' करने के पूर्व हमें यह जानना चाहिए कि हमारी 'जीवनी-शक्ति' किस स्तर पर है? हमारा लक्ष्य क्या है? हमें किस दिशा में आगे बढ़ना है?

'मानव-शरीर' में स्थित उक्त सात 'चक्र' मूलतः ऐसे केन्द्र हैं, जहाँ 'स्थूल शरीर' से 'प्राण-शरीर' का मिलन होता है। 'स्थूल शरीर' और 'प्राण-शरीर' का यह मिलन बहुत रहस्य-मय और गुरु-मुख-गम्य है। 'स्थूल-शरीर' और 'प्राण-शरीर' के मिलन पर उत्पन्न होनेवाले भावों को व्यक्त नहीं किया जा सकता। शास्त्र और गुरु-देव सङ्केतों के द्वारा इन भावों को समझाते हैं, जिन्हें हम अपनी-अपनी पात्रता के अनुरूप समझ पाते हैं। संक्षेप में, 'कुण्डलिनी-जागरण' की अनन्त सम्भावनाएँ हैं। ऋषि-मुनियों ने जो अनुभव प्राप्त किए हैं, वे शास्त्रों के रूप में हमें उपलब्ध हैं। 'शास्त्रोक्त पूजा, स्तुति, जप और ध्यान' से सहज रूप में 'कुण्डलिनी-शक्ति' का जागरण होता है। शास्त्रोक्त-पथ को समझने के लिए 'गुरु' का महत्त्व सर्वोपरि है। 'गुरु' ही शास्त्र-रूपी अनन्त समुद्र से चुन कर हमारी 'पात्रता' के अनुरूप 'साधना' हमें बताते हैं।

★ ★ ★



'श्रीकुण्डलिनी' चिज्जीव-रूपा मूल जीवन-शक्ति है। यह प्रकृति की अपनी निज की वह शक्ति है, जो अपने भिन्न-भिन्न प्रवाहों में सम्बन्ध स्थापित करती है। यह 'चिद्र' के साथ 'स्थूल' का सम्बन्ध स्थापित करती है और इसका लक्ष्य है—'अणु-अणु में विकासा'।

'मूलाधार' के चतुर्दल पद्म से 'आज्ञा'-पर्यन्त के षट्-पद्मों में लिप्यक्षरों का विन्यास कर, 'मूलाधार' से 'आज्ञा-चक्र' पर्यन्त प्रत्येक पद्म-दल में "हंसः सोऽहं" मन्त्र का यथा-विधि जप और ध्यान आदि करने से जीवनात्मिका 'श्रीकुण्डलिनी' में ध्वन्यक्षर-शक्ति भर जाती है।

"हंसः सोऽहं"—वह बीजात्मिका, त्रिगुणात्मिका महा-शक्ति तथा जीवनी-शक्ति 'कुण्डलिनी' एक ही है, इस भाव से जपना चाहिए। इस प्रकार भक्ति-पूर्वक 'जप' करने से साधक दुःख-द्वन्द्वादि से तो छूटता ही है, मुक्ति भी पाता है।

— गुप्तावतार बाबाश्री

‘कुण्डलिनी’-उत्थापन की क्रिया

❖ श्रीबदन सिंह, रायभा, आगरा (उ०प्र०)

‘शिव-संहिता’ के अनुसार गुह्य-देश से दो अंगुल ऊपर और लिङ्ग-मूल से दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तृत ‘मूलाधार’-पद्म है। उसके बीच ‘ब्रह्म-नाड़ी’ के मुख में ‘स्वयम्भू लिङ्ग’ है, जिसके गात्र में दक्षिणावर्त से साढ़े तीन लपेट लगाकर ‘कुण्डलिनी’-शक्ति है। यह ‘कुण्डलिनी’-शक्ति — नित्यानन्द-स्वरूपा परमा प्रकृति है। इसके दो मुख हैं। यह विद्युल्लताकारा अति सूक्ष्मा है। देखने में आधे ॐ-कार की जैसी मालूम होती है। इसे बाह्य चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, केवल अनुभूति-परक है। ‘कुण्डलिनी’ के अभ्यन्तर में केले के कोष-जैसी कोमल ‘चित्’-शक्ति है।

‘कुण्डलिनी’-शक्ति इच्छा, क्रिया और ज्ञान में विभक्त होकर शरीर के चक्रों में भ्रमण करती है। यह हमारी ‘जीवनी शक्ति’ है। इसे संवर्धित करना और इसके प्रति सजग रहना ही ‘योग’-साधना का मुख्य उद्देश्य है।

‘कुण्डलिनी’ यद्यपि ‘जीवात्मा’ की ‘प्राण’-स्वरूपा है किन्तु ‘ब्रह्म’-द्वार को रोक कर सुख से सोती है, जिससे ‘जीवात्मा’ ‘इन्द्रिय’-गण द्वारा चालित होकर ‘अहं’-भावापन्न होती है और ‘अज्ञान’-वश सुख-दुःखादि की भ्रान्ति में पड़कर ‘कर्म-फल’ को भोगती है। ‘कुण्डलिनी’ के न जागने पर वास्तविक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता और किसी भी साधना में सफलता नहीं मिलती। ‘गौतमीय तन्त्र’ का वचन है—

मूल-पद्मे कुण्डलिनी, यावन्निद्रायिता प्रभो! तावत् किञ्चिन्न सिध्येत, मन्त्र-यन्त्रार्चनादिकं॥

जागर्ति यदि सा देवि! बहुभिः पुण्य-सञ्चयैः। तदा प्रसादमायाति, मन्त्र-यन्त्रार्चनादिकं॥

प्रतिदिन ‘कुण्डलिनी’ का ध्यानादि पाठ करने से यह शक्ति धीरे-धीरे जागृत होती है। ‘कुण्डलिनी’-उत्थापन की मानसिक प्रणाली इस प्रकार है—

■ साधक उपयुक्त स्थान में कम्बल, मृग-चर्म आदि किसी आसन पर ‘पूर्व’ या ‘उत्तराभिमुख’ बैठकर धूपादि से वातावरण को सुगन्धित करे। फिर सुविधानुसार ‘पद्मासनादि’ से स्थिर होकर बैठे। तब ५ प्राण, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि—इन १७ अङ्गों की आधार-स्वरूपा ‘जीवात्मा’ को मूलाधार-स्थित ‘कुण्डलिनी’ के साथ एकत्र रूप में चिन्तन करे।

■ ‘मूलाधार’-चक्र और ‘कुण्डलिनी’ का मानस नेत्रों से दर्शन कर ‘कूर्च’-बीज (ह्रूं) के उच्चारण-सहित उभय-नासिका-पथ से वायु को खींचकर ‘मूलाधार’ में चलाते हुए यह ध्यान करे कि वहाँ ‘कुण्डलिनी’ के चारों ओर स्थित कामाग्नि प्रज्वलित हो रही है और इस अग्नि के उद्दीपित होने से ‘कुण्डलिनी’ जागृत हो रही है।

■ उक्त समय 'हंस'-मन्त्र का उच्चारण कर 'अश्विनी'-मुद्रा द्वारा गुह्य को संकुचित करे। कुम्भक द्वारा वायु को रोकने से 'कुण्डलिनी' ऊर्ध्व-गमनोन्मुखी होगी। तब साधक 'कुण्डलिनी' को महा-तेजो-मयी शक्ति के रूप में ध्यान करे। ऐसा करने पर 'कुण्डलिनी' अपना एक मुख पूर्व-वत् रखकर दूसरे मुख से 'मूलाधार'-स्थित 'ब्रह्मा' और 'डाकिनी'-शक्ति तथा उस पद्म के चारों दलों पर स्थित 'वं-शं-वं-सं'— इन चार 'मातृका'-वर्णों और समस्त देवता एवं चारों वृत्तियों को ग्रस लेगी अर्थात् ये सब उस 'कुण्डलिनी'-शक्ति के शरीर में लय हो जाएँगे। वहाँ व्याप्त 'पृथ्वी'-मण्डल भी लय को प्राप्त होकर 'कुण्डलिनी'-शक्ति के मुख पर 'लं'-बीज-रूप में अवस्थान करेगा। उस समय मूलाधार-पद्म अधो-मुख, बन्द होकर कुम्हला जाएगा। यहाँ उल्लेखनीय है कि ध्यान के समय सभी 'पद्म' ऊर्ध्व-मुख और विकसित हो जाते हैं। 'कुण्डलिनी' चैतन्य होकर जब 'पद्म' में पहुँचती है, तब वह 'पद्म' विकसित हो उठता है, किन्तु जब जिस 'पद्म' को छोड़ती है, तब वह 'मूलाधार' की ही भाँति अधो-मुख, बन्द होकर कुम्हला जाता है।

■ 'मूलाधार' का त्याग कर 'स्वाधिष्ठान' में पहुँचने पर 'कुण्डलिनी' पूर्व-मुख को 'मणिपुर' की ओर उठाएगी और दूसरे मुख द्वारा 'स्वाधिष्ठान' में विराजित 'विष्णु' और 'राकिनी'-शक्ति, कमल-दल-स्थित देवता-गण 'वं-भं-मं-यं-रं-लं'— ये छः 'मातृका'-वर्ण एवं १ प्रश्रय, २ अविश्वास, ३ अवज्ञा, ४ मूर्छा, ५ सर्व-नाश और ६ क्रूरता— इन छः वृत्तियों का ग्रस कर लेगी। 'पृथ्वी'-बीज 'लं' जल में लय होकर जब 'वं'-बीज में परिणत होता हुआ 'कुण्डलिनी' के मुख में अवस्थान करने लगता है, तब वह पूर्व-मुख को 'मणिपुर' की ओर उठाने लगती है। 'कुण्डलिनी' जब उठने लगती है, तब साधक उसकी अनुभूति पाने लगता है क्योंकि वह जितनी दूर तक उठेगी, उतनी ही दूर तक मेरु-दण्ड में सिङ्ग-सिङ्ग-शब्द होकर रोमाञ्च होने लगेगा और मन में अपूर्व आनन्द का अनुभव होगा।

■ 'मणिपुर' में पहुँचकर 'कुण्डलिनी' पूर्व-मुख को 'अनाहत' की ओर उठाएगी और दूसरे मुख द्वारा 'मणिपुर'-स्थित 'रुद्र' और 'लाकिनी'-शक्ति, 'पद्म'-पत्र-स्थित देवता-गण, 'डं-ढं-णं-तं-थं-दं-धं-नं-पं-फं'—इन दस 'मातृका'-वर्णों एवं १ लज्जा, २ पिशुनता, ३ ईर्ष्या, ४ सुषुप्ति, ५ विषाद, ६ कषाय, ७ तृष्णा, ८ मोह, ९ घृणा और १० मय— इन दस वृत्तियों का ग्रस कर लेगी। जब 'वं' बीज 'अग्नि'-मण्डल में लीन होकर 'रं' बीज में परिणत हो 'कुण्डलिनी' के मुख में अवस्थान होगा, तब 'कुण्डलिनी' पूर्व-मुख को 'अनाहत' की ओर ऊपर उठाएगी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'मणिपुर' को 'ब्रह्म-ग्रन्थि' कहते हैं। उसे भेदते समय मेरु-दण्ड के भीतर चिन्-चिन् शब्द होता है और विषम वेदना होने लगती है। ऐसे समय प्रायः उदरामाशय-रोग होकर शरीर कृश और दुर्बल हो जाता है।

■ 'अनाहत' में आकर 'कुण्डलिनी' पूर्व-मुख को 'विशुद्धि' की ओर उठाकर दूसरे मुख द्वारा 'अनाहत'-स्थित देव-देवी और 'कं-खं-गं-घं-ङं-चं-छं-जं-झं-ञं-टं-ठं'— इन बारह 'मातृका'-वर्णों एवं १ आशा, २ चिन्ता, ३ चेष्टा, ४ नम्रता, ५ दम्भ, ६ विकलता, ७ विवेक, ८ अहङ्कार, ९ अभिलाषा, १० कपट, ११ वितर्क और १२ अनुताप—इन द्वादश वृत्तियों को ग्रस लेगी। 'रं'-बीज 'वायु'-मण्डल

में लीन होकर 'यं'-बीज में परिणत हो 'कुण्डलिनी' के मुख में अवस्थान करने लगेगा। उस समय 'कुण्डलिनी' अपना पूर्व-मुख 'विशुद्धि' की ओर उठाएगी। यहीं 'विष्णु-ग्रन्थि' है।

■ 'विशुद्धि' में पहुँच कर 'कुण्डलिनी' पूर्व-मुख को 'ललना-चक्र' की ओर उठाकर दूसरे मुख द्वारा 'विशुद्धि'-स्थित अर्ध-नारीश्वर शिव और शाकिनी शक्ति तथा दलों पर स्थित समस्त देवी-देवता, अं-आं-ई-ई-उं-ऊं-ऋं-ॠं-लृं-लृं-एं-ऐं-ओं-औं-अं-अः—इन षोडश 'मातृका'-वर्णों एवं १ निषाद, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ षड्ज, ५ मध्यम, ६ धैवत और ७ पञ्चम— इन सप्त स्वरों सहित 'ॐ, हूं, फट्, बौषट्, वषट्, स्वधा, स्वाहा, नमः, विष, अमृत' आदि का ग्रास कर लेगी। 'वायु'-बीज 'यं' आकाश में लीन होकर 'हं'-बीज में परिणत होकर 'कुण्डलिनी' के मुख में अवस्थान करने लगेगा। ऐसे समय 'कुण्डलिनी' पूर्व-मुख को 'ललना'-चक्र की ओर उठाएगी।

■ 'ललना'-चक्र में पहुँच कर 'कुण्डलिनी' पूर्व-मुख 'आज्ञा'-चक्र की ओर उठाकर दूसरे मुख द्वारा 'ललना'-स्थित १ श्रद्धा, २ सन्तोष, ३ स्नेह, ४ दम, ५ मान, ६ अपराध, ७ शोक, ८ खेद, ९ अरति, १० संभ्रम, ११ उर्मि और १२ शुद्धता— इन द्वादश वृत्तियों का ग्रास कर लेगी। तब वह अपना मुख 'आज्ञा-चक्र' की ओर उठाएगी।

■ 'आज्ञा-चक्र' में पहुँच कर 'कुण्डलिनी'—'आज्ञा'-चक्र के शिव, शक्ति और 'हं'-'कं'-'क्षं'— इन तीन 'मातृका'-वर्णों, सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणों एवं ब्रह्मा-विष्णु-शिव प्रभृति 'पद्म'-स्थित देव-समूह का ग्रास कर लेगी। आकाश-बीज 'हं'—'मनश्चक्र' में लीन होकर मनश्चक्र-मध्यस्थ 'शिव' और 'कुण्डलिनी' के शरीर में लीन हो जाएगा। इस पद्म का नाम 'रुद्र-ग्रन्थि' है। इस ग्रन्थि का भेदन करने पर साधक हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ और तेज-युक्त हो जाएगा।

■ 'सोम'-चक्र में पहुँचकर 'कुण्डलिनी'—'सुषुम्ना' के मुख से नीचे अर्ध-चन्द्राकार-मण्डल को भेद कर जितनी ही ऊँची उठेगी, उतनी ही गति से नाद, बिन्दु, हकारार्ध और निरालम्ब-पुरी प्रभृति का ग्रास कर लेगी। इस 'अर्ध-चन्द्राकार-कपाट' का भेदन कर देने से 'कुण्डलिनी' स्वयं उत्थित होकर 'ब्रह्म-रन्ध्र-स्थित सहस्र-दल-पद्म' में 'परम पुरुष' के साथ संयुक्त हो जाती है। इस प्रकार 'आद्या-शक्ति कुल-कुण्डलिनी' स्थूल भूत से लेकर प्रकृति-पर्यन्त सांख्य के चौबीस तत्त्वों का ग्रास करके शिर-स्थित 'सहस्रार' में पहुँच कर 'पर-शिव' के साथ संयुक्त और एकीभूत हो जाती है। ऐसे समय प्रकृति-पुरुष की सम-रसता से उत्पन्न अमृत-धारा द्वारा क्षुद्र ब्रह्माण्ड-रूप शरीर प्लावित होता है। साधक बाह्य ज्ञान से शून्य होकर अनिर्वचनीय आनन्द में निमग्न हो जाता है।

■ इसके पश्चात् 'कुण्डलिनी' को पुनः वापस 'मूलाधार' में पहुँचाने का उद्योग किया जाता है। 'कुण्डलिनी' को नीचे उतारते समय साधक को 'सोऽहं' मन्त्र का उच्चारण करके उभय नासा-पथ द्वारा धीरे-धीरे श्वास त्यागना चाहिए। प्रत्यागमन के समय निरालम्ब-पुरी, प्रणव, नाद, बिन्दु आदि उद्गीर्ण करके जब 'कुण्डलिनी'—'आज्ञा-चक्र' में उपनीत होगी, तब उससे मन, परम-शिव, हाकिनी शक्ति तथा सत्त्व, रज और तम— ये तीन गुण, 'मातृका'-वर्ण एवं 'पद्म'-स्थित अन्यान्य समस्त यथा-स्थान सृष्ट होकर अवस्थान करेंगी।

'मनश्चक्र' से 'आकाश'-बीज 'हं' उत्पन्न होकर उसे मुख में धारण करते हुए उस मुख द्वारा 'ललना'-चक्र को भेदते हुए 'विशुद्धि' में उपस्थित होती है। यहाँ पहुँच जाने पर उसके मुख से 'अर्ध-नारीश्वर शिव' और 'शाकिनी शक्ति' एवं 'मातृका'-वर्ण, सप्त स्वरादि के साथ अमृत आदि उत्पन्न होकर यथा-स्थान संस्थित हो जाएँगे। ऐसे समय अपर मुख भी इस 'पद्म' में प्रत्यागमन करेगा। 'हं' से 'आकाश' आविर्भूत हो जाएगा और 'आकाश' से 'वायु'-बीज उत्पन्न होकर उसके मुख में अवस्थान करेगा। उस समय कुण्डलिनी 'अनाहत' में दूसरे मुख को ले जाएगी।

■ 'अनाहत' में पहुँच जाने पर 'कुण्डलिनी' के मुख से 'पद्म'-स्थिता समस्त देवी-देवता, 'मातृका'-वर्ण और आशा प्रभृति समस्त वृत्तियाँ उत्पन्न होकर पूर्व-वत् यथा-स्थान विराजमान होंगी और क्रमशः दूसरा मुख इस 'पद्म' में उपनीत हो जाएगा। 'यं' से 'वायु' की उत्पत्ति होगी और उससे 'अग्नि'-बीज 'रं' उत्पन्न होकर पूर्व-वत् मुख के द्वारा 'मणिपुर' में उपस्थित हो जाएगा।

■ 'मणिपुर' में पहुँच जाने पर कुण्डलिनी अपने मुख से इस 'चक्र'-स्थित रुद्र और लाकिनी शक्ति, 'मातृका'-वर्ण एवं लज्जा आदि वृत्ति तथा अन्यान्य समस्त तत्त्वों को सृष्ट कर पूर्व-वत् यथा-स्थान स्थापित हो जाएगी। उसका अपर मुख क्रमशः इस 'पद्म' में पहुँच जायगा। 'रं' से वरुण-बीज 'वं' उत्पन्न होकर कुण्डलिनी के मुख में अवस्थान करेगा। 'स्वाधिष्ठान' में विराजनेवाले विष्णु और राकिनी शक्ति, 'मातृका'-वर्ण, अविश्वासादि वृत्तियाँ एवं अन्याय समस्त तत्त्व आविर्भूत होकर पूर्व-वत् स्थापित हो जाएँगे। उस समय अपर मुख भी क्रमशः यहाँ पहुँचेगा। 'वं' से 'जल' उत्पन्न होगा और 'जल' से 'पृथ्वी'-बीज 'लं' उत्पन्न होकर 'कुण्डलिनी' के मुख में अवस्थान करेगा।

■ 'कुण्डलिनी' के 'मूलाधार' में उपस्थित होने पर उसके मुख से ब्रह्मा और डाकिनी शक्ति, 'मातृका'-वर्ण एवं अन्यान्य समस्त तत्त्व उत्पन्न होकर यथा-स्थान अवस्थित होंगे। 'लं' से 'पृथ्वी'-मण्डल की सृष्टि होगी। उस समय अपर मुख इस चक्र में पहुँचकर ब्रह्म को विवर में रखते हुए 'ब्रह्म'-द्वार को बन्द कर सुख से निद्रित हो 'कुण्डलिनी' अन्य मुख से निश्वास-प्रश्वास त्यागने लगेगी। तब 'जीवात्मा' पुनः भ्रान्ति और माया-मोह में मुग्ध होकर जीव-भाव से यथा-स्थान अवस्थान करेगा।

उक्त प्रणाली से 'कुम्भक' के रूप में भावना द्वारा क्रमशः अभ्यास किया जाता है। यह 'सांख्य'-योग का साधन है। इस विवरण में षट्-चक्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य चक्रों के भी नाम आए हैं, जिनकी क्रियाएँ स्वतः ही सम्पन्न हो जाती हैं। अतः 'षट्-चक्र-भेदन' का ही क्रम बतलाया जाता है और अन्य चक्रों के विषय में विस्तार नहीं दिया जाता। फिर भी यहाँ विशेष ज्ञान हेतु उल्लेख कर दिया गया है। ये 'चक्र' अभ्यास करनेवाले साधक की अनुभूति में आते हैं।

'कुण्डलिनी' को उठाते समय 'हंसः' कहकर उठाएँ और उतारते समय 'सोऽहं' का जप करें। इसी प्रकार 'कुण्डलिनी' को सहस्रार में स्थापित करके गुरुपदिष्ट देवता अर्थात् जो जिस महा-विद्या का उपासक हो, वह कुण्डलिनी शक्ति को उसी महा-विद्या एवं पर-शिव की तन्निर्दिष्ट भैरव-रूप में कल्पना कर दोनों की सम-रसता की भावना करें।

‘कुण्डलिनी’ - योग का विवेचन

★ ‘कुल-भूषण’ पं० रमादत्त शुक्ल

१. ‘कुण्डलिनी’ - योग की व्यापकता

तान्त्रिकों की ‘कुण्डलिनी शक्ति’ और ‘षट्-चक्रों’ का महत्त्व आर्य वाङ्मय में बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वास्तव में यही ‘तान्त्रिक साधना’ योग-शास्त्र का मूलाधार है। ‘ज्ञान’-मार्ग के उपनिषद् के साहित्य में भी इस तान्त्रिक रहस्य ने महत्त्व का स्थान प्राप्त किया है। यहाँ हम इस विषय का सप्रमाण स्पष्टीकरण करते हैं। उपनिषद्-साहित्य की अपनी अलग विशेषता है। इस साहित्य में ऐसी सामग्री का पाया जाना, जो ‘कुण्डलिनी’-योग पर प्रकाश डालती है, एक महत्त्व की बात है। यह अवश्य है कि कहीं तो इस योग को विशुद्ध योग के रूप में प्रतिपादित किया गया है और कहीं उपासना के अङ्ग-रूप में। इस सम्बन्ध में भूत-शुद्धि की क्रिया विचारणीय है। देवता के पूजन के पहले ‘भूत-शुद्धि’-क्रिया का करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है, यह सभी साधकों को मालूम है। ‘मन्त्र-महोदधि’ की प्रथम तरङ्ग में लिखा भी है—

देवार्चा-योग्यता-प्राप्त्यै, भूत-शुद्धिं समाचरेत् ।

अर्थात् देव-पूजा करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए ‘भूत-शुद्धि’ करे ।

अब यदि ‘भूत-शुद्धि’ को विशुद्ध जैगिक क्रिया के रूप में लिया जाए, तो सिद्ध योगी के अतिरिक्त और ऐसा कौन हो सकता है, जो वास्तव में ‘कुण्डलिनी’ को सहस्रार में ले जा सके? अतएव नित्य की सामान्य ‘भूत-शुद्धि’ की क्रिया मानसिक मात्र होती है और इसी से उसे उपासना का अङ्ग-रूप माना जाता है, योग का नहीं। इसी प्रकार पूजा के एक रूप में साधक अपने शरीर के विविध अङ्गों में इष्ट-देवता को प्रतिष्ठित कर सकता है और वह करता भी है। यह भी उपासना का अङ्ग-रूप है। तथापि कुछ शास्त्रों में उक्त योग को ‘योग-क्रिया’ के रूप में वर्णित किया गया है।

भारतीय दर्शनों में ‘हृदय’ को जाग्रत् चित् का स्थान माना गया है। जाग्रत् अवस्था में ‘हृदय’ विकसित रहता है और सुषुप्ति-अवस्था में वह संकुचित हो जाता है। स्वप्नावस्था में बाह्य इन्द्रियाँ ‘हृदय’ में अन्तर्भूत हो जाती हैं किन्तु उनकी प्रतिनिधि बुद्धि जाग्रत् रहती है। सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि भी अन्तर्भूत हो जाती है। इसके अतिरिक्त ७२,००० नाड़ियों के वर्णन के साथ इस बात का उल्लेख मिलता है कि किस प्रकार प्राण ब्रह्म-रन्ध्र में होकर प्रवेश करता है और बाहर निकलता है तथा उक्त नाड़ियों में से एक नाड़ी द्वारा ऊर्ध्व श्वास चलता है—इस विवरण से स्पष्ट है कि ‘कुण्डलिनी’-योग के सिद्धान्तों को उक्त दर्शनों में स्वीकार किया गया है, यद्यपि उनका उल्लेख नहीं हुआ है। ‘ब्रह्म-रन्ध्र’ और ‘एक-नाड़ी’ के उल्लेख से ‘शिरो मेरुदण्ड’ और ‘सुषुम्णा’ की उस सन्धि की ओर संकेत होता है, जिससे होकर ही प्राण ‘ब्रह्म-रन्ध्र’ में जाता है। इसी से शिव-संहिता में ‘सुषुम्णा’ को ही ‘ब्रह्म-रन्ध्र’ कहा गया है। ‘मोक्ष’—‘ज्ञान’ द्वारा प्राप्त किया जाता है, जिसके सम्बन्ध में ‘ऐतरेय आरण्यक’ में कहा है कि ‘ज्ञान — ब्रह्म’ है ।

'हंस उपनिषद्' के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि उसमें दिए गए ज्ञान के जानने का अधिकार केवल शान्त, दान्त (संयमी) और गुरु-भक्त ब्रह्मचारी को ही है। उक्त उपनिषद् में 'षट्-चक्रों' के नाम दिए हैं; 'मूलाधार' से वायु के उठाने की विधि भी उसमें दी गई है—जो स्पष्ट ही 'कुण्डलिनी-योग' है। यथा—

.....गुदमवष्टभ्याधाराद् वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः-प्रदक्षिणी-कृत्य मणि-पूरकं च गत्वा अनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणान् निरुध्याज्ञामनुध्यायन् ब्रह्म-रन्ध्रं ध्यायन्.....

आगे बताया है कि—

.....'हृदये अष्ट-दले हंसात्मानं ध्यायेत् ।'

इसका भाव यह है कि हंस (अर्थात् जीव) का स्थान है — अनाहत के नीचे हृदय के अष्ट-दल-कमल में, जिसमें इष्ट-देवता की पूजा की जाती है। इस कमल के आठों दल विभिन्न वृत्तियों से सम्बन्धित हैं। पूर्व का दल पुण्य से, दक्षिण-पूर्व का निद्रा और आलस्य से, दक्षिण का क्रूरता से, दक्षिण-पश्चिम का पाप से, पश्चिम का क्रीड़ा से, उत्तर-पश्चिम का गमनादि गतियों से, उत्तर का रति और प्रीति से तथा उत्तर-पूर्व का दल द्रव्य-ग्रहण की वृत्ति से सम्बन्धित है। इस कमल के मध्य में वैराग्य है। केशर में 'जाग्रदवस्था' और कर्णिका में 'स्वप्नावस्था' है। नाल में 'सुषुप्ति'-अवस्था है और कमल के ऊपर 'निरालम्ब'-प्रदेश है, जं 'तुरीयावस्था' है। लिखा भी है—

....पूर्व-दले पुण्ये मतिः, आग्नेये निद्रालस्यादयो भवन्ति, याम्ये क्रूरे मतिः, नैऋते पापे मनीषा, वारुण्यां क्रीड़ा, वायव्ये गमनादौ बुद्धिः, सौम्ये रति-प्रीतिः, ईशाने द्रव्यादानं, मध्ये वैराग्यं, केशरे जाग्रदवस्था, कर्णिकायां स्वप्नं, लिङ्गे सुषुप्तिः, पद्म-त्यागे तुरीया....

प्रायः इस 'अष्ट-दल कमल' और 'अनाहत चक्र' को लोग एक ही समझ बैठते हैं, जब कि 'अनाहत चक्र' मेरु-दण्ड में स्थित है और 'अष्ट-दल-कमल' शरीर के हृदय-देश में।

'ब्रह्म-उपनिषद्' में बताया है कि—

'नाभिर्हृदयं कण्ठं मूर्धा च, तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति ।'

अर्थात् नाभि, हृदय, कण्ठ और मूर्धा में ब्रह्म के चतुष्पाद का प्रकाश रहता है। टीकाकार नारायण के अनुसार इनके उल्लेख द्वारा 'ब्रह्मोपनिषद्' यह निर्देश करता है कि ये वे चार केन्द्र हैं, जिनसे निर्दिष्ट विधि से साधना कर ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि नीचे के दो तामसिक केन्द्रों का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया। आगे टीकाकार ने बताया है कि उक्त चार स्थान कमलों के निर्देशक हैं और उसने बुद्धि को दसवां द्वार बताया है। अन्य नौ में आँखें, कान, नासा आदि हैं।

'ध्यान-बिन्दु-उपनिषद्' में इस बात का उल्लेख मिलता है कि योगी अनाहत नाद को सुनता है। उसमें यह निर्देश है कि पूरक से नाभि में 'चतुर्भुज महावीर विष्णु' का ध्यान करे, कुम्भक से हृदय में 'पद्मासीन ब्रह्मा' का और रेचक से मस्तक में 'त्रिनेत्र रुद्र' का ध्यान करे। इनमें से निम्न-तम कमल के आठ दल हैं, दूसरा कमल अधो-मुख है और तीसरा, जो सर्व-देव-मय है, कदली-पुष्प के समान है। आगे सौ शत-दल-कमलों पर ध्यान करना बताया है और फिर सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि पर। आत्मा कमल को उठाती है और उसमें से बीज लेकर चन्द्र, अग्नि और सूर्य को जाती है। लिखा भी है—

अतसी-पुष्प-सङ्काशं, नाभि-स्थाने प्रतिष्ठितं । चतुर्भुजं महा-विष्णुं, पूरकेण विचिन्तयेत् ।
कुम्भकेन हृदि-स्थाने, चिन्तयेत् कमलासनं । ब्रह्माणं रत्न-गौराभं, चतुर्वक्त्रं पितामहम् ।
रेचकेन तु विद्यात्मा, ललाटस्थं त्रिलोचनं । शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशं, निष्कलं पाप-नाशनम् ।
अब्ज-पत्रमधः-पुष्पमूर्ध्व - नालमधो - मुखं । कदली-पुष्प - सङ्काशं, सर्व-वेद-मयं शिवम् ।
शतारं शत-पत्राढ्यं, विसृकीर्णाम्बु-कर्णिकं । तत्रार्क - चन्द्र - वह्नीनामुपर्युपरि चिन्तयेत् ।
पद्मस्योद्घाटनं कृत्वा, बोध-चन्द्राग्नि-सूर्यकं । तस्य हृद्-बीजमाहृत्य, आत्मानं चरते ध्रुवम् ।

'अमृत-नाद-उपनिषद्' में पञ्च-तत्त्वों का और उनके ऊपर अर्ध-मात्रा अर्थात् आज्ञा का उल्लेख हुआ है। यथा—

पार्थिवः पञ्च-मात्रस्तु, चतुर्मात्रस्तु वारुणः । आग्नेयस्तु त्रि-मात्रोऽसौ, वायव्यस्तु द्वि-मात्रकः ।
एक-मात्रस्तथाकाशो, ह्यमात्रं तु विचिन्तयेत् ।

इस उपनिषद् में तत्त्वों का वर्णन-क्रम वैसा ही है, जैसा चक्रों के सम्बन्ध में मिलता है। जैसे इसमें हृत्-प्रवेश को वायु-प्रवेश बताया है (क्योंकि यहाँ वायु-तत्त्व) है। इसके ऊपर 'मोक्ष'-द्वार बताया गया है। यथा—

हृद्-द्वारं वायु-द्वारं च, मूर्ध्नि द्वारमथापरं । मोक्ष-द्वारं बिलं चैव, सुषिरं मण्डलं विदुः ।।

यह भी कहा गया है कि योगी जिस मार्ग को देखता है, उसी से होकर प्राण और मन जाते हैं। इसका आशय टीकाकार ने यह बताया है कि यह वह मार्ग है, जिससे होकर प्राण मूलाधार में प्रवेश करता और बाहर जाता है। टीकाकार ने कुछ की हठ क्रियाएँ भी दी हैं।

'क्षुरिका-उपनिषद्' में ७२,००० नाड़ियों और इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना का वर्णन है। सुषुम्ना को छोड़कर इन सबकी 'ध्यान-योग' द्वारा सेवा हो सकती है। यथा—

ततः कण्ठान्तरे योगी, समूहं नाडि-सञ्चयं । एकोत्तरं नाडी-शतं, तासां मध्ये वराः स्मृताः ।
सुषुम्ना तु परे लीना, विरजा ब्रह्म-रूपिणी । इडा तिष्ठति वामेन, पिङ्गला दक्षिणेन च ।
द्वा-सप्तति-सहस्राणि, प्रति-नाडीषु तैतिलं । छिद्यते ध्यान-योगेन, सुषुम्नैका न छिद्यते ।
आगे कहा है—

अति-सूक्ष्मां च तन्वीं च, शुक्लां नाडीं समाश्रये । तत्र सञ्चारयेत् प्राणानूर्ण-नाभीव तन्तुना ।

अर्थात् साधक को श्वेत तथा अति सूक्ष्म नाड़ी में से प्राण-वायु सञ्चालित करना चाहिए। आगे पूरक, रेचक, कुम्भक और हठ-क्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है।

'नृसिंह-पूर्व-तापनीय-उपनिषद्' में सुदर्शन (सम्भवतः मूलाधार) का वर्णन है, जो क्रमशः छः, आठ, बारह, सोलह, बत्तीस दलोंवाले कमलों में परिवर्तित होता है। इनमें से दूसरे को छोड़कर शेष संख्याएँ 'कुण्डलिनी'-योग में वर्णित पद्मों की दल-संख्या से मिलती हैं क्योंकि यदि उक्त दूसरे को 'स्वाधिष्ठान' माना जाए, तो उसे दस दलवाला होना चाहिए था। परन्तु वास्तव में यहाँ जो दल-संख्या दी गई है, वह मन्त्राक्षरों पर आधारित है। इस प्रकार 'षट्-दल-कमल' में सुदर्शन का 'षडक्षर मन्त्र' है, 'अष्ट-दल-कमल' में 'नारायण का अष्टाक्षर मन्त्र' और 'द्वादश-दल-कमल' में 'वासुदेव का द्वादशाक्षर मन्त्र' है। 'षोडश-दल-कमल' में 'बिन्दु' या अनुस्वार-युक्त सोलह कलाएँ ('कुण्डलिनी-योग' में स्वर) हैं। बत्तीस

दल-वाला कमल (आज्ञा) वास्तव में 'द्वि-दल' ही है क्योंकि इसमें 'नृसिंह' और उनकी शक्ति के दो मन्त्र हैं। ये दोनों ही मन्त्र 'षोडशाक्षर' हैं। लिखा है—

एतत् सुदर्शनं महा-चक्रं तस्य मध्ये नाभ्या तारकं यदक्षरं नारसिंहमेकाक्षरं, तद् भवति षट्सु पत्रेषु षडक्षरं, सुदर्शनं भवत्यष्टसु पत्रेष्वष्टाक्षरं, नारायणं भवति द्वादशसु पत्रेषु द्वादशाक्षरं, वासुदेवं भवति षोडशसु पत्रेषु मातृकाद्याः सविन्दुकाः षोडश-स्वरा भवन्ति, द्वात्रिंशत्सु पत्रेषु द्वा-त्रिंशदक्षरं मन्त्र-राजं नारसिंहमानुष्टुभं भवति.....

'मैत्री उपनिषद्' के छठे अध्याय में नाडियों का और विशेषकर सुषुम्ना तथा सूर्य, चन्द्र और अग्नि-मण्डलों के भेदन का एवं अमना (उन्मनी का दूसरा नाम) का वर्णन है।

'योग-तत्त्व-उपनिषद्' और 'योग-शिखा-उपनिषद्' में 'हठ-योग' का वर्णन है। दूसरे में अन्तर्द्वार का बन्द होना, सुषुम्ना के मुख-द्वार का खुलना (अर्थात् 'कुण्डलिनी' के ब्रह्म-द्वार में प्रवेश करने से) और सूर्य का भेदन वर्णित हुआ है।

'राम-तापनीय-उपनिषद्' में आसन, द्वार-पूजा, पीठ-पूजा जैसी विभिन्न यौगिक और तान्त्रिक क्रियाओं का उल्लेख किया गया है और 'भूत-शुद्धि' का विशेषतया वर्णन हुआ है।

इसी प्रकार अथर्ववेदीय शाण्डिल्य उपनिषद्, कृष्ण यजुर्वेदीय वराह और योग-कुण्डली उपनिषदों तथा शुक्ल-यजुर्वेदीय मण्डल-ब्राह्मण उपनिषद् एवं ऋग्वेदीय नाद-बिन्दु उपनिषद् में ऐसे अनेक विवरण हैं, जो 'कुण्डलिनी-योग' का प्रतिपादन करते हैं।

'उपनिषद्'-साहित्य के अतिरिक्त 'पुराण'-साहित्य में भी 'कुण्डलिनी-योग' का प्रकरण मिलता है। यथा 'देवी भागवत' में 'षट्-चक्रों' या पद्मों का विस्तार के साथ वर्णन है। मूलाधार में 'कुण्डलिनी' को उठाकर 'हंस'-मन्त्र द्वारा उसे जीव से संयुक्त करने का विवरण दिया है। 'भूत-शुद्धि' अर्थात् स्थूल तत्त्वों को सूक्ष्म तत्त्वों में लय करना, जिसकी समाप्ति महत् तत्त्व को प्रकृति में और माया को आत्मा में लय करके होती है, उसके उल्लेख के साथ धरा-मण्डल तथा अन्य मण्डलों के सम्बन्ध में बताया है। पृथ्वी और अन्य तत्त्वों के बीज दिए गए हैं। 'पाप-पुरुष' के नाश की कल्पना भी दी गई है, जैसा कि 'महा-निर्वाण' और अन्य तन्त्रों में मिलता है। 'प्राण-शक्ति' का एक मननीय ध्यान भी इसमें दिया गया है, जो 'प्रपञ्चसार' में दिए गए एक दूसरे ध्यान से बहुत कुछ मिलता है।

'लिङ्ग-पुराण' में चक्रों और उनके विभिन्न दलों का उल्लेख है। इसमें लिखा है कि शिव निर्गुण हैं, परन्तु मनुष्य के कल्याण के लिए वह उमा-सहित शरीर में वास करते हैं और योगी-जन विभिन्न पद्मों में उनका ध्यान करते हैं। 'अग्नि-पुराण' के अध्याय २३ में तान्त्रिक क्रियाओं, इन्द्रजाल और मन्त्र-विषय का प्रचुरता के साथ वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में 'भूत-शुद्धि'-क्रिया का भी उल्लेख किया गया है, जिसमें नाभि, हृदय और आज्ञा — शरीर के इन केन्द्रों में तत्सम्बन्धी बीज-मन्त्रों के ध्यान द्वारा साधक के शरीर का अमृत-प्रवाह से स्फूर्ति-मय होना बताया है।

२. 'कुण्डलिनी'-योग की यथार्थता

'कुण्डलिनी'-योग के तान्त्रिक स्वरूप का प्रतिपादन करने में भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य का अत्यधिक हाथ रहा है। यह तो एक सर्व-विदित बात है ही कि उनके द्वारा स्थापित मठों में तन्त्र-प्रसिद्ध श्रीयन्त्र की

उपासना प्रारम्भ से ही प्रचलित है। इसके अतिरिक्त **भगवद्-गीता** के ८ वें अध्याय के ९-१० श्लोकों की व्याख्या में **शङ्कराचार्य जी** ने उक्त-योग के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा है कि—

‘पहले हृत्कमल (अनाहत) वशीभूत किया जाता है। तब भूमि (मूलाधार आदि) पर विजय प्राप्त कर ऊर्ध्व-गामिनी नाड़ी (सुषुम्ना) से होते हुए भ्रू-मध्य में प्राण स्थिर करने के बाद योगी प्रकाशमान पुरुष तक पहुँचता है।’

इस व्याख्या पर **श्री आनन्दगिरि जी** ने यह टीका की है—‘इडा और पिङ्गला के मध्य में स्थित सुषुम्ना से, भ्रू-मध्य-स्थान के समान ही कण्ठ तक पहुँचा जाता है। भूमि को जय करने से तात्पर्य है उस क्रिया से, जिसके द्वारा पञ्च-भूत वशीभूत किए जाते हैं।’

श्रीधर स्वामी जी का कथन है—‘योग-बल से प्राण को सुषुम्ना से ले जाए।’

मधुसूदन सरस्वती जी का कहना है—‘ऊर्ध्व-गामिनी नाड़ी सुषुम्ना है और भूमि-विजय तथा शेष कार्य गुरुपदिष्ट मार्ग से सम्पन्न हो जाता है। भ्रू-मध्य-स्थान से तात्पर्य है — ‘**आज्ञा-चक्र**’ से। वहाँ प्राण को स्थिर करने से वह ब्रह्म-रन्ध्र से बाहर निकल जाता है और जीव — पुरुष में मिल जाता है।’

सुप्रसिद्ध स्तव ‘**आनन्द-लहरी**’ में, जो **श्री शङ्कराचार्य** कृत मानी जाती है, इस योग (**षट्-चक्र-भेद**) का विस्तृत विवरण दिया है। **श्री विद्यारण्य** के ‘**शङ्कर-विजय**’ में **षट्-कमलों** का उल्लेख करते हुए यह भी बताया गया है कि प्रत्येक चक्र के देवता का पूजन करने से किस फल की प्राप्ति होती है।

पण्डित आर० अनन्त शास्त्री ने लिखा है—‘अनेक महा-पुरुषों ने कुण्डलिनी को सहस्रार में पहुँचाकर सत् और चित् से उसका संयोग कराने में सफलता पाई है। प्रसिद्ध ‘**सुभगोदय**’ के रचयिता **श्री गौडपादाचार्य जी** के शिष्य **श्रीमत् शङ्कराचार्य** का नाम ऐसे महा-पुरुषों में प्रमुख है। उक्त ग्रन्थ के सिद्धान्तों से भले प्रकार परिचित होने के बाद **श्री शङ्कराचार्य** ने अपने गुरु के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर विशेष शिक्षण प्राप्त किया। तदनन्तर अपने निजी अनुभव से उक्त ज्ञान को और विस्तृत कर उन्होंने मन्त्र-शास्त्र पर १०० श्लोकों की अपनी प्रसिद्ध कृति लिखी। इनमें से प्रारम्भ के ४१ श्लोक ‘**आनन्द-लहरी**’ कहलाते हैं और शेष ‘**सौन्दर्य-लहरी**’। ‘**आनन्द-लहरी**’ की प्रसिद्धि और प्रामाणिकता इसी से प्रकट है कि इस पर प्रायः सभी योग्य टीकाकारों ने टीकाएँ लिखी हैं और इसके साथ ही इसमें लिखित योग की व्यापकता तथा सार्थकता भी स्पष्ट होती है।’ **‘श्रीललिता त्रि-शती’** के टीकाकार ने भी लिखा है—

‘**सर्वेषां प्राणिनां शिरसि अमृतमस्ति इति योग-मार्गेण कुण्डलिनी-गमने तत्रत्य तत्-प्रवाहप्लुतेन योगिनां ईश्वर-साम्यम् जायते इति योग-शास्त्रेषु प्रसिद्धम् ।**’

अर्थात् योग-शास्त्रों में प्रसिद्ध है कि सभी प्राणियों के शिर में अमृत रहता है और योग-मार्ग से कुण्डलिनी के वहाँ जाने पर उस अमृत से आप्लावित होने से योगी ईश्वर के समान हो जाते हैं।

इस प्रकार व्यापक रूप से आदृत होते हुए भी ‘**कुण्डलिनी**’-योग आलोचकों के पैने वाग्वाणों से नहीं बच सका, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सच तो यह है कि आलोचना-प्रत्यालोचना से सत्य की प्रतिष्ठा अधिकाधिक बढ़ती ही है। यह अवश्य है कि कुतर्कों और हठ-धर्मों से पूर्ण आलोचना का न समाधान किया जा सकता है, न वैसा करने की आवश्यकता ही है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उक्त योग के सम्बन्ध में उठ सकनेवाली समस्त शङ्काओं का यथा-सम्भव समाधान करने का प्रयत्न

किया जाए। इसी उद्देश्य से यहाँ 'कुण्डलिनी'-योग के एक आलोचक के तीव्र विचारों का सारांश दिया जाता है। बाद में इनका उत्तर भी लिखा जाएगा, जिससे 'कुण्डलिनी'-योग की यथार्थता पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।

उक्त आलोचक का कहना है कि—'मोक्ष-साधन-रूप योग को ज्ञान और कर्म-रूप द्वारों में प्रवेश कर प्राप्त किया जाता है। 'योग' निस्सन्देह आनन्द है, क्योंकि उसका अर्थ ही है — जीवात्मा का ब्रह्म से मिलन और 'ब्रह्म'—आनन्द ही है। 'आनन्द' के कई स्वरूप हैं। उदाहरणार्थ शारीरिक आनन्द—चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म। ऐसी दशा में जिस यौगिक क्रिया से आनन्द की प्राप्ति हो, उसे मोक्ष-दायक समझना सर्वथा भ्रम-पूर्ण है। कुछ शक्तियों पूर्व बौद्धों ने शून्य-वाद की खोज की और एक नए प्रकार की निर्वाण-मुक्ति का मिथ्या प्रदर्शन कर उक्त द्वारों को बन्द कर दिया, जो मुक्ति-द्वार थे। आज इन द्वारों को तीन उपायों से प्राप्त किया जाता है। पहला वह सिद्धान्त है; जिसके अनुसार विश्वास से कृष्ण को पाया जा सकता है, परन्तु जहाँ तर्क है, वहाँ वे दुर्लभ हैं। दूसरा उपाय ब्राह्म-समाजियों की वह गलत धारणा है, जिसके अनुसार वे पाश्चात्य ढङ्ग से विचार करते हैं कि गिरजाघर में आँखें बन्द कर और बार-बार यह कहकर कि 'प्रभु दया-मय हैं, स्नेह-मय पिता हैं और सदा हमारे कल्याणेच्छु हैं' प्रभु को प्रसन्न कर लेंगे क्योंकि उपासना का अर्थ ही है स्तुति, प्रशंसा करना और इस प्रकार हम उस निराकार अपरिवर्तन-शील ब्रह्म को वशीभूत कर लेंगे। तीसरा उपाय उन लोगों का मत है, जो सभी धार्मिक कृत्यों को केवल अन्ध-विश्वास मानते हैं; जो केवल स्वार्थ को अच्छा समझते हैं और जिन्हें दूसरों की आँखों में धूल झोंकने तथा इन्हीं से प्रशंसा प्राप्त करने में सुख मिलता है। विष्णु ने कलि-युग में वेदों को विलीन करने के लिए शून्यवादी बुद्ध के रूप में अवतार लिया और अनेक मिथ्या सिद्धान्तों को (यथा अर्हतों के) प्रतिपादित होने दिया। ब्रह्माजी का सिर नष्ट करने के पाप से आक्रान्त होने पर रुद्र नृत्य करने लगे और तब उनके शरीर से अनेक उच्छिष्ट रुद्र उत्पन्न हुए, जो कभी सत्कर्म नहीं करते। विष्णु और शिव ने एक दूसरे से पूछा कि 'क्या हम इन लोगों का कुछ उपकार कर सकते हैं?' उनके इन आंशिक स्वरूपों ने तब वेद-विरोधी शास्त्र प्रचलित किए, जिनसे वे उच्चतर स्थिति को उठ सकें। अतएव हमें अब शास्त्रों की अवश्य ही समीक्षा करनी चाहिए। संस्कृत में केवल यह लिखा होने से कि 'शिव उवाच'—शिव बोले, हमें यह न मान लेना चाहिए कि आगे जो कुछ कहा जा रहा है, वह सब सच है। 'वेद' और 'स्मृति' के विरुद्ध जो भी हो, उस सबको छोड़ देना होगा। 'वेद' के उन शत्रुओं में से, जिनके लिए उक्त शास्त्र बनाए गए^१, कुछ वैष्णव बन गए और कुछ शैव। एक ऐसा शास्त्र 'तन्त्र' कहलाया, जिसमें 'षट्-चक्र-साधना' नामक भौतिक योग की प्रणाली दी गई है। यह साधना और कुछ नहीं, व्यावसायिक गुरुओं की एक चाल मात्र है, जिन्होंने झूठी शास्त्रोक्तियाँ तक प्रचलित कर रखी हैं। अधिक क्या, तन्त्र-शास्त्र के उल्लेख मात्र से हमें लज्जित होना पड़ता है। 'षट्-चक्र-साधना'—आध्यात्मिक प्रगति में एक बाधा मात्र है। 'कुण्डलिनी' को सहस्रार में पहुँचाने से आनन्द-प्राप्ति सम्भव है क्योंकि जिन लोगों ने उसे अनुभव किया है, उन्होंने उसकी पुष्टि की है। परन्तु यह आनन्द केवल क्षणिक उच्च प्रकार का शारीरिक आनन्द है, जो शरीर के साथ मिट जाता है। यह वह आनन्द नहीं है, जो 'ब्रह्म' और 'मोक्ष' है। 'मोक्ष'—सहस्रार में प्रवेश करने से नहीं मिलता

अपितु 'ब्रह्म-रन्ध्र' का भेदन कर उसे छोड़ने और विदेह बनने से मिलता है।^१ तान्त्रिक शरीर में बने रहने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार सस्ते में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है। ठीक उसी प्रकार जैसे ब्रह्म और आर्य-समाज के सदस्य सस्ते ढङ्ग से 'ब्रह्म' -ज्ञानी बन गए हैं। अमृत भी तान्त्रिक के लिए सस्ता है। परन्तु जो सस्ता होता है, वह सदा बेकार होता है। तथापि सभी लोग 'षट्-चक्र' का नाम सुनकर आकर्षित हो उठते हैं। कुछ लोग तान्त्रिक विश्वास में इतने डूब चुके हैं कि उन्हें उसके शास्त्रों में कुछ भी गलत नहीं मिलता। वास्तव में ऐसे लोग म्लेच्छता से परिपूर्ण हैं। मान्त्रिक गुरु 'षट्-चक्र' के सम्बन्ध में बातें कर लोगों को आकर्षित करते हैं। वे उन लोगों को अपने तथा-कथित 'कमल' दिखाने का वचन देते हैं, जो उनके मत में सम्मिलित हो जाएँ। लोगों को 'दीक्षा'-गुरु के पास लाने के लिए आदमी भेजे जाते हैं।^२ तान्त्रिकों का कहना है कि 'पद्म' वास्तव में हैं; परन्तु यदि वे हैं, तो उन्हें देखने की विधि हमें क्यों नहीं बताई जाती?^३ साथ ही उनमें देवताओं, डाकिनियों और योगिनियों का होना भी माना गया है तथा किसी भी क्षण उनका निरीक्षण किया जा सकता है।^४ यह सब कितना भौतिकता-पूर्ण है ! वे शिव के ऊपर एक 'पर-शिव' बताते हैं, मानों 'ब्रह्म' एक से अधिक है।^५ अमृत लाक्षा-वर्ण वाला बताया गया है। यदि ऐसा हो, तो अमृत स्थूल वस्तु हुआ, जिसे देखा भी जा सकता है और कोई भी डाक्टर उसे बाहर निकाल सकता है। फिर गुरु की आवश्यकता ही क्या है?^६ थोड़े में कह सकते हैं कि 'तान्त्रिक षट्-चक्र' और कुछ नहीं, मन बहलाने की एक कल्पना मात्र है। योग-रूप बन्द द्वार के खोलने की कुंजी वास्तव में 'कर्म' और 'ज्ञान' हैं। इस कुंजी को शक्तियों पूर्व हिन्दू-समाज के पास से दूर हटा दिया गया था। लगभग २,५०० वर्ष पहले शङ्कर ने 'षट्-चक्र-योग' का उन्मूलन किया और इस प्रकार तन्त्रों की निरर्थकता सिद्ध कर दी।

उपर्युक्त आलोचना के लेखक ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और हो सकता है कि उसे पता ही न हो कि चक्रों का उल्लेख उपनिषदों में है, जिसकी चर्चा इस लेख के प्रारम्भ में हो चुकी है, परन्तु उसने यह स्वीकार किया है कि पुराणों में चक्रों का वर्णन है। यह स्वीकृति उसने इस आरोप के साथ दी है कि

१. यह उक्ति बिलकुल भ्रामक है। तान्त्रिकों की यह मान्यता है कि 'वेद' और 'आगम' में कोई अन्तर नहीं है, अविद्या-ग्रस्त ही इन दोनों में अन्तर देखते हैं।
२. यह सच है कि पूर्ण मुक्ति, कैवल्य विदेह है परन्तु एक ऐसी भी मुक्ति है, जिसमें योगी अपना शरीर बनाए रखता है। यह 'जीवन्मुक्ति' कहलाती है। वास्तव में 'छोड़ने' की बात ही व्यर्थ है क्योंकि शङ्कर का कथन है कि आत्मा कहीं आती-जाती नहीं।
३. सत्य यहाँ यह कहने को बाध्य करता है कि यह आरोप बिलकुल निराधार है। सच बात तो यह है कि सद्-गुरु अपने भावी शिष्य के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहता है। ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे को तो वह दीक्षा देता ही नहीं और जो उसके पास काफी समय सत्सङ्ग कर चुके हों, उन्हें भी वह उनके अत्यन्त आग्रह पर ही 'दीक्षा' प्रदान करता है।
४. पुस्तकों और सद्-गुरुओं दोनों ही से इस सम्बन्ध में जानकारी मिल सकती है।
५. यह कोई तमाशा नहीं, जिसमें सबकी पहुँच हो। इसका अनुभव वही कर सकता है, जिसने इस मार्ग की कठिनाइयों को जीत लिया हो।
६. 'ब्रह्म' एक ही है पर उसके विविध स्वरूप हैं।
७. यह 'अमृत' शरीर में है। अनुभूति में आनेवाली सभी वस्तुएँ इतनी स्थूल नहीं होतीं कि औषधि उन पर प्रभाव डाल सके।

पौराणिक चक्र वेदानुकूल हैं, जबकि **तान्त्रिक चक्र** वैसे नहीं हैं। उसने माना है कि '**शिव-पुराण**' में छः चक्रों का वर्णन है, परन्तु वहाँ यह नहीं कहा गया है कि उक्त चक्रों का अस्तित्व वास्तव में है और न ही उनके सम्बन्ध में किसी साधना का उल्लेख किया है; केवल पूजन हेतु उन चक्रों की कल्पना करने का विधान वहाँ दिया गया है। बाह्य पूजा में भी उसी प्रकार के कमलों में देवों और देवियों की पूजा की जाती है। इस दृष्टि-कोण के अनुसार जो बाह्य पूजा थी, उसे ही पुराणों में अन्तः-पूजा का रूप दे दिया गया। पुराण के अनुसार यदि कोई किसी अन्तः-कमल की पूजा करता है, तो इससे यह न समझना चाहिए कि वहाँ कोई वस्तु है। वह तो केवल अपनी कल्पना की एक रचना की पूजा करता है, परन्तु यह एक विलक्षण बात है कि इस कल्पित रचना से पूजक को कुछ लाभों का मिलना बताया गया है और इसी से उक्त आलोचक के कथनानुसार पूजक को उसी चक्र में पूजन करना प्रारम्भ करना चाहिए, जिसका वह अधिकारी हो। परन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि जब केवल कल्पना मात्र है, तब 'अधिकारिता' का प्रश्न क्यों और कैसे उठ खड़ा हुआ? फिर यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि '**लिङ्ग-पुराण**' में '**कुण्डली-उत्थापन**', '**षट्-चक्र-भेद**' और '**अमृत-पान**' आदि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। उसमें केवल यह लिखा है कि 'विभिन्न कमलों में शिव और देवी का ध्यान करो।' ऐसी ही लचर बातों के आधार पर उक्त आलोचक यह फतवा देता है कि '**पुराण**' और '**तन्त्र**' के **षट्-चक्र-विधानों** में मौलिक अन्तर है! उसकी यह उक्ति कितनी हास्यास्पद है कि 'चक्रों के पौराणिक वर्णन में प्रत्येक बात स्पष्ट रूप से बताई गई है, परन्तु तान्त्रिक वर्णन में सभी कुछ रहस्य-मय है। ठीक भी है, यदि ऐसा न होता, तो गुरु के रूप में वह अपना व्यापार कैसे चला पाते?'

इस आलोचक ने '**शून्य-वाद**' के सम्बन्ध में अपने जिस ज्ञान का परिचय दिया है, उसके आधार पर बौद्ध उसे फटकार सकते हैं। उसी प्रकार तान्त्रिक उसके द्वारा **तन्त्र-शास्त्र** की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताई गई कथा का खण्डन करेंगे। इतिहासज्ञ उसके इस कथन को सार-हीन ठहरावेंगे कि शङ्कराचार्य ने 'तन्त्र' का उन्मूलन किया क्योंकि 'शङ्कर-विजय' के अनुसार **शङ्कराचार्य** का कार्य अपने समय में वर्तमान सम्प्रदायों का उन्मूलन करना नहीं था, अपितु सुधार कर उनमें ऐक्य-सम्बन्ध स्थापित करना तथा उन्हें ऐसी प्रेरणा देना था कि वे अपने विभिन्न विधानों के अनुसार समान आदर्श का अनुधावन कर सकें। फिर इस लेख के प्रारम्भ में दिखाया जा चुका है कि **श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्य** स्वयं '**कुण्डलिनी-योग**' के बड़े भारी मर्मज्ञ और प्रतिपादक थे। **ब्रह्म-समाजी, आर्य-समाजी, वैष्णव और शैव** उक्त आलोचक की उन उक्तियों पर अपना रोष प्रकट कर सकते हैं, जिनसे उनका सम्बन्ध है। इन साम्प्रदायिक तर्क-वितर्कों को एक ओर रख कर यहाँ उपर्युक्त आलोचना के उत्तर में विवादास्पद विषय के सम्बन्ध में कुछ लिखने का प्रयत्न किया जाता है—

यह पहले ही कह देना और समझ लेना उचित होगा कि '**कुण्डलिनी-योग**' की **यथार्थता** लिखकर प्रमाणित करना सम्भव नहीं है, विशेष कर उस दशा में, जब कोई उसके यथार्थ सिद्धान्तों को अमान्य करने का निश्चय कर चुका हो क्योंकि इस योग की यथार्थता स्वयं अनुभव करने से ज्ञात होती है। वास्तविक प्रयोग द्वारा अवश्य '**कुण्डलिनी-योग**' के महत्त्व का अनुभव किया जा सकता है। तथापि सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक दृष्टि-कोण के अनुसार इस योग पर लेख-द्वारा प्रकाश डालना सम्भव है और सच्चे जिज्ञासु उससे बहुत कुछ लाभ भी उठा सकते हैं। यह सच है कि '**मोक्ष**'-प्राप्ति में '**ज्ञान**'-पूर्वक '**कर्म**' ही सहायक होता

है। **भक्ति—कर्मात्मक** और **ज्ञानात्मक** दोनों ही प्रकार की होती है। यथा — गन्ध-पुष्पादि से पूजा करना '**कर्मात्मक**' और ध्यानादि भावना में तन्मय होना '**ज्ञानात्मक**' है। यह भक्ति '**कर्म**' व '**ज्ञान**' सहित योग के प्रसिद्ध आठ अङ्गों में सम्मिलित है। इन अङ्गों में से अन्य दो अङ्ग हैं — १. **तपस्**, जो **कर्म-योग** का रूप है और २. **ध्यान**, जो **ज्ञान-योग** का रूप है। **अष्टाङ्ग-योग** में **आसन** और **प्राणायाम** जैसी हठ-क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं। हठ-योगी शारीरिक क्रियाओं और स्वरूप का विकास करते हैं। हठ-विद्या के वास्तविक दृष्टि-कोण के अनुसार यह ज्ञान का उपाङ्ग है, जिसके द्वारा 'मोक्ष' प्राप्त होता है। यह भी स्पष्ट ही है कि सभी प्रकार का आनन्द मोक्ष नहीं है। मादक द्रव्य-पान से भी एक प्रकार का आनन्द मिल सकता है, परन्तु कोई भी उस आनन्द को मोक्ष नहीं मानता। इसी प्रकार '**हठ-योग**' की क्रियाओं से विभिन्न प्रकार का स्थूल या सूक्ष्म आनन्द मिल सकता है, जो वह आनन्द नहीं होता। तथापि '**कुण्डलिनी-योग**' को केवल 'भौतिक' कहना भ्रम में पड़ना है। 'योग' के अन्य रूपों की भाँति इसका एक भौतिक या हठ-स्वरूप भी है, क्योंकि मनुष्य स्थूल, सूक्ष्म और आध्यात्मिक है। परन्तु इसका एक ज्ञानात्मक स्वरूप भी है। समस्त 'योग' में मानसिक व्यायाम की व्यवस्था है। चूँकि **जीव—भौतिक और आध्यात्मिक** दोनों ही हैं, इसलिए दोनों ही स्वरूपों में अनुशासन और प्रगति की आवश्यकता होती है।

'**कुण्डलिनी**' को मन्त्र द्वारा, जो चैतन्य का एक रूप है, जाग्रत किया जाता है। '**कुण्डलिनी-योग**' कितनी सार्थक साधना है, इसे स्पष्ट करने के लिए यहाँ उसका संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है। अतएव '**षट्-चक्र-निरूपण**' के आधार पर उसे यहाँ संक्षेप में लिखा जाता है। ५०वें श्लोक में लिखा है—

'हंकारेणैव देवी....विरचयति....शुद्धि-बुद्धि-स्वभावः'

अर्थात् जिसका सारा अस्तित्व ब्रह्म में लीन है, वह हंकार-मन्त्र से देवी को जाग्रत करता है। आगे श्लोक ५१ में लिखा है—

'....सा देवी शुद्ध सत्त्वा....'

अर्थात् वह देवी ही शुद्ध सत्त्व है। उल्लेखनीय है कि '**चैतन्य**' के पाँच विभिन्न रूप माने गए हैं—

१. सत्त्व, २. अति सत्त्व, ३. परम सत्त्व, ४. शुद्ध सत्त्व और ५. विशुद्ध सत्त्व।

श्लोक ५२ में क्या ही स्पष्ट लिखा है—

नीत्वा तां कुल-कुण्डलीं लय-वशात् जीवेन सार्धं सुधी—

मोक्षे धामनि शुद्ध-पद्म-सदने शैवे परे स्वामिनि।

ध्यायेदिष्ट-फल-प्रदां भगवतीं चैतन्य - रूपां परां,

योगीन्द्रो गुरु-पाद-पद्म-युगलालम्बी समाधौ यतः॥

अर्थात् समाधि में लीन बुद्धिमान् और श्रेष्ठ योगी, जो अपने गुरुदेव के चरण-कमलों का भक्त है, उस कुल-कुण्डलिनी को जीव के साथ शुद्ध कमल-गृह के मोक्ष-स्थान में स्थित पर-शिव के निकट ले जाए और सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली चैतन्य-स्वरूपा परा-भगवती का ध्यान करे। कुल-कुण्डली को ले जाते समय वह उसमें सभी वस्तुओं के लय होने की कल्पना करता रहे।

प्रत्येक केन्द्र में, जिसमें होकर '**कुण्डलिनी**' जाती है, ध्यान किया जाता है। '**आज्ञा-चक्र**' में मन केवल '**ज्ञान**'-शक्ति से एकाकार होकर ही '**कुण्डलिनी**' में लीन हो सकता है, क्योंकि वह सर्व-शक्ति-

स्वरूपा होने से 'ज्ञान'-शक्ति ही है। इस प्रकार 'लय-योग' में कर्म और ज्ञान का मिश्रण है। कर्म से साधन द्वारा और ज्ञान से सीधे 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है। 'आज्ञा-चक्र' में 'मनस्' और 'ॐ' का होना तथा उन पर साधक का ध्यान करना निर्दिष्ट किया गया है (श्लोक ३३)। इस चक्र में साधक की आत्मा को निश्चय ही ध्यान-मय हो जाना चाहिए। साधक की आत्मा 'ॐ' का ध्यान है और 'ॐ' विशुद्ध बुद्धिवालों की अन्तरात्मा है। वह अनुभव करता है कि वह और 'ब्रह्म' एक हैं तथा एक-मात्र 'ब्रह्म' ही सत् है। अन्य सब असत् है। इस प्रकार वह अद्वैत-वादी या व्यष्टि और समष्टि के ऐक्य को अनुभव करनेवाला बन जाता है। अभ्यास द्वारा यहाँ मन को लय कर दिया जाता है और ऐसा अभ्यास स्वयं मानसिक क्रिया है। प्राण और मन की एकता अनुभव करनेवाले मन्त्र पर ध्यान कर योगी मन को पदार्थात्मक संसार से विमुक्त कर लेता है और उन्मनी अवस्था को प्राप्त करता है। यहाँ 'परम शिव' है। तान्त्रिक यह नहीं मानता कि अनेक विभिन्न देवताओं के समान अनेक शिव हैं। 'ब्रह्म' एक है। रुद्र, शिव, परम शिव आदि उस एक ब्रह्म के विभिन्न स्वरूपों के नाम हैं। जब यह कहा जाता है कि अमुक चक्र में अमुक देवता है, तो इसका यह अर्थ है कि उक्त चक्र में ब्रह्म की क्रिया का स्थान है और उस क्रिया के दैवत-रूप को 'देवता' कहते हैं। इन क्रियाओं में विभिन्नता होने से देवता भी भिन्न-भिन्न हैं। सहस्रार के 'हंसः' में सभी देवता हैं। 'आज्ञा-चक्र' में ही योगी अपने मृत्यु-काल में अपने प्राणों को रखता है और उस परम पुरुष में मिल जाता है, जो त्रिलोकों के आदि में था और जिसे वेदान्त के द्वारा जाना जाता है। यह सच है कि अन्य क्रियाओं की भाँति योगी की यह क्रिया भी हठ-क्रियाओं से युक्त है, परन्तु ये सब 'ध्यान'-युक्त हैं। यह ध्यान 'कुण्डलिनी' और जीवात्मा को उस बिन्दु से मिलाता है, जो 'शिव-शक्ति'-मय है। इस मिलन के बाद मृत्यु होने पर योगी ब्रह्म-रन्ध्र का भेदन करता हुआ शरीर से मुक्त होकर ब्रह्म में एकाकार हो जाता है। योगाभ्यास में पूर्णता प्राप्त कर लेने पर कारणावान्तर शरीर को केवल ध्यान द्वारा 'आज्ञा-चक्र' के ऊपर और 'सहस्रार' के नीचे देखा जा सकता है।

'सहस्रार' में वह सूक्ष्म शून्य है, जिसे महान् प्रयास से ही प्राप्त किया जा सकता है और जो 'मोक्ष' का मुख्य मूल है। परम शिव में आनन्द के दो रस एकीभूत हैं — एक तो रस या परमानन्द-रस (अर्थात् मोक्षानन्द) और दूसरा विरस (या शिव-शक्ति-योग-जन्य आनन्द)। इस दूसरे से ही विश्व की उत्पत्ति होती है और क्षुद्र ब्रह्माण्ड या शरीर को परिप्लुत करनेवाला 'अमृत' उत्पन्न होता है। शुद्ध-मना यति उस ज्ञान से शिक्षित होता है, जिसके द्वारा वह जीवात्मा और परमात्मा में ऐक्य स्थापित करता है। वही श्रेष्ठ व्यक्ति, जिसने अपने चित्त को नियन्त्रित कर लिया हो अर्थात् अपने अन्तःकरण को सहस्रार में केन्द्रित किया हो और उसे जान लिया हो, पुनर्जन्म से मुक्त होकर 'मोक्ष' प्राप्त करता है। वह 'जीवन्मुक्त' हो जाता है। शरीर में वह तभी तक रहता है, जब तक प्रारम्भ किए हुए कर्म को सम्पूर्ण करने के लिए उसे रहना आवश्यक हो। भगवती निर्वाण कला ही 'तत्त्व-ज्ञान' अर्थात् 'ब्रह्म-ज्ञान' प्रदान करती है। वह नित्यानन्द-मयी है और वह नित्यानन्द ही विशुद्ध चैतन्य है, जिसे योगी-जन शुद्ध ज्ञान द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। इसी ज्ञान से 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है। 'माया तन्त्र' में लिखा है कि—'योग-विद् का कहना है कि यह जीव और आत्मा का ऐक्य (समाधि में) है।' दूसरों के अनुभव के अनुसार यह शिव और आत्मा के तादात्म्य का ज्ञान है। आगम-वादियों का कथन है कि शक्ति का ज्ञान—'योग' है। अन्य ज्ञानियों का कहना है कि पुराण-पुरुष का

ज्ञान-‘योग’ है; और पुनः प्रकृति-वादियों की घोषणा है कि शिव-शक्ति के ऐक्य का ज्ञान-‘योग’ है। वस्तुतः किसी भी देवता के उपासक को अपने उपास्य के साथ अपने तादात्म्य का अनुभव करना चाहिए। उदाहरणार्थ, ‘प्रणव की उपासना’ में उपासक ॐ-कार के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। पूजा के अन्य रूपों में वह ‘कुण्डलिनी’ के साथ अपना तादात्म्य अनुभव करता है क्योंकि विभिन्न देवताओं के विभिन्न मन्त्रों में वही सन्निहित है। संक्षेप में कह सकते हैं कि ‘ज्ञान’ का अर्थ है — ‘क्रिया’-ज्ञान और ‘स्वरूप’-ज्ञान। ‘स्वरूप’-ज्ञान — आध्यात्मिक अनुभूति है और ‘क्रिया’-ज्ञान वे ध्यानात्मक प्रक्रियाएँ हैं, जिनके द्वारा उस अनुभूति की उपलब्धि होती है। जब ‘कुण्डलिनी’—शिव से मिलती है, तब वह ‘ज्ञान’ प्रदान करती है, क्योंकि उसका और शिव का स्वरूप ही ‘ज्ञान’-मय है।

‘शिव’-संयोग के बाद ‘कुण्डलिनी’ लौटती है। इस प्रकार जब वह बार-बार शिव के पास हो आती है, तब योगी की इच्छानुसार वह अन्तिम बार यात्रा करती है, जिसमें फिर लौटना नहीं होता। तब साधक ‘जीवन्मुक्त’ हो जाता है। उसका शरीर तभी तक सुरक्षित रहता है, जब तक सक्रिय कर्म की परिसमाप्ति नहीं होती। वैसा होने पर वह ‘विदेह’ या ‘कैवल्य-मुक्ति’ प्राप्त कर सकता है। भगवान् शङ्कराचार्य ने अपनी प्रसिद्ध ‘आनन्द-लहरी’ में स्पष्टतया बताया है कि ‘कुण्डलिनी’ के ऊर्ध्व-गमन में जैसे ‘लय-क्रम’ (तत्त्वों का लय होना) होता है, वैसे ही उसकी वापसी में ‘सृष्टि-क्रम’ (तत्त्वों की पुनः रचना) होता है। ‘षट्-चक्र-निरूपण’ के ५४वें श्लोक में लिखा है—

‘ज्ञात्वैतत् क्रममुत्तमं यत-मना योगी यमाद्यैर्युतः संसारे न हि जन्यते नित्यानन्द-परम्परा-प्रमुदितः शान्तः.....’

अर्थात् इस उत्तम क्रम को जानकर यम-नियम आदि (अष्टाङ्ग-योग की अन्य क्रियाएँ, जिनमें ध्यान, जिससे समाधि होती है, सम्मिलित है) के अभ्यास से मन को नियन्त्रित करनेवाला योगी संसार में फिर कभी जन्म नहीं लेता, ब्रह्म के नित्यानन्द से आनन्दित होकर वह शान्ति प्राप्त करता है।

इस प्रकार ऊपर वर्णित ‘कुण्डलिनी-योग’ के विवरण से स्पष्ट है कि यह केवल भौतिक नहीं है, अपितु मोक्ष का कारण है और जगच्चैतन्य की उस जीव-शक्ति को जाग्रत करनेवाला है, जो मनुष्य को उसके अपने स्वरूप का बोध कराती है। इसमें सन्देह नहीं कि योगी उक्त योग में ‘कर्म’ और ‘ज्ञान’-रूपी द्वारों से ही प्रवेश कर ‘मोक्ष’ के आनन्द को प्राप्त करता है और इस तथ्य से ‘कुण्डलिनी-योग’ की यथार्थता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

३. शाक्त-धर्म में ‘कुण्डलिनी-योग’

‘कुण्डलिनी’-योग की साधना का ‘शाक्त-धर्म’ में बड़ा महत्व है। यह इसी बात से स्पष्ट है कि प्रत्येक शाक्त साधक इस योग की भावना करता हुआ पाया जाता है, भले ही वह इसके तत्त्व को हृदयङ्गम न कर सका हो। स्वयं ‘शक्ति-उपासना’ भी इस योग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। ‘कुण्डलिनी मुखे जुहोमि’ कहकर ‘कुण्डलिनी’ के मुख में ही आद्य तत्त्व समर्पण करने का सङ्कल्प किया जाता है। इसी प्रकार साधना-सम्बन्धी अन्य अङ्गों में भी ‘कुण्डलिनी’-योग का सम्पर्क विद्यमान मिलता है।

‘कुण्डलिनी’-योग के करने का अधिकार सर्व-साधारण को नहीं है। इस योग का अभ्यास वही व्यक्ति कर सकता है, जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि के सतत व्यवहार द्वारा लोभ-क्रोध आदि पतित

करनेवाली वृत्तियों से छुटकारा पा चुका हो। लोभादि वृत्तियों से जिनका मन अशान्त होता रहता हो, उसे गुरु उपदेश कैसे दे सकता है? सद्-गुरु तो शान्त चित्तवाले संयम-शील साधक व्यक्ति को ही सदुपदेश देने की कृपा करेंगे। 'कुण्डलिनी'-योग की विधि के सम्बन्ध में यहाँ पहले संक्षिप्त विवरण देना उचित प्रतीत होता है।

सर्व-प्रथम साधक को गुरुदेव-द्वारा बताए गए आसन में सँभलकर बैठना चाहिए। तब साधक अपने सीने को सिकोड़कर प्राण-वायु या ऊर्ध्व श्वास को रोककर मन-ही-मन 'हंसः' (मैं परम सत्ता हूँ) मन्त्र का जप करता हुआ हृदय से जीवात्मा को मूलाधार में, जहाँ 'कुण्डलिनी' विश्राम करती है, कल्पना द्वारा पहुँचाए। तब गुदा-द्वार और आस-पास की माँस-पेशियों को सिकोड़कर तथा अपान वायु या अधो-वायु को रोके और फिर मन में शब्द-बीज 'हुं' का जप करते हुए वायु को उठावे। इससे अग्नि के प्रज्ज्वलित होने में सहायता मिलती है। फिर अग्निबीज 'रं' और वायु-बीज 'यं' की सहायता से वायु को ऊपर को उठावे।

इस प्रकार उत्पन्न वायु से 'कुण्डलिनी' जाग्रत् हो जाती है और वह सहस्रार-स्थित परम-शिव से मिलने के लिए शीघ्रता-पूर्वक ऊपर को बढ़ती है; उसके पीछे-पीछे जीवात्मा भी जाती है। जब 'कुण्डलिनी' इस प्रकार 'चित्रिणी' पर स्थित चक्रों या पद्मों को पार करती हुई ऊपर को बढ़ती है, तो वह कोटि सूर्य के समान उज्ज्वल और कोटि चन्द्र-वत् शीतल प्रतीत होती है। साथ ही उसके पहुँचने पर सभी 'चक्र' या 'पद्म' एक-एक करके उद्भासित हो उठते हैं और वे क्रमशः ऊर्ध्व-मुख होते जाते हैं अर्थात् उनकी पंखुड़ियाँ 'कुण्डलिनी' के गन्तव्य मार्ग की ओर झुक जाती हैं। इसी प्रसङ्ग में 'शिव-संहिता' में लिखा है —

“गच्छन्ती ब्रह्म-मार्गेण लिङ्ग-त्रय-क्रमेण वै, अमृतं तद् विसर्गस्थं परमानन्द-लक्षणम्, पीत्वा कुलामृतं दिव्यं पुनरेव विशेत् कुलम्।”

अर्थात् 'कुण्डलिनी' ब्रह्म-मार्ग से जाती हुई क्रम-पूर्वक तीन लिङ्गों का एक-एक कर भेदन करती हुई आगे बढ़ती है। वह सहस्रार से टपकते हुए दिव्य कुलामृत का पान करती है और आनन्द-मय होकर 'मूलाधार'-चक्र-स्थित कुल-स्थान में लौट आती है। इस प्रकार वह शिव के तीन लिङ्गों का भी भेदन करती है। शिव के तीन लिङ्ग क्रमशः ये हैं—

१. मूलाधार पर 'स्वयंभू-लिङ्ग', २. अनाहत पर 'वाण-लिङ्ग' और ३. आज्ञा-चक्र पर 'इतर-लिङ्ग'।

'कुण्डलिनी' शब्द-ब्रह्म के स्थूल रूप से उसके अत्यन्त सूक्ष्म रूप तक जाती है। अर्थात् प्रारम्भ में 'कुण्डलिनी' वैखरी दिशा में रहती है और इसी दिशा में 'स्वयंभू-लिङ्ग' से वह मिलती है। मध्यमा दशा में वह हृत्पद्म पर 'वाण-लिङ्ग' से मिलती है और पश्यन्ती दशा में वह भ्रू-मध्य में 'इतर-लिङ्ग' से संयुक्त होती है। अन्त में परा भाव को प्राप्त करती हुई वह परा बिन्दु में पहुँचती है।

यहाँ 'हंसः' (जीवात्मा) — 'सोहं' (परमात्मा) या 'परम-हंसः' में लीन हो जाता है। जैसे ही 'कुण्डलिनी' अग्नि-शिखा-वत् प्रकाशमान परमानन्द-रूप अमृत परम-शिव तक पहुँचती है और उससे संयुक्त होती है, वैसे ही उसका 'महा-कुण्डलिनी' (विशुद्ध सत्त्व) स्वरूप प्रकट हो उठता है, जिससे नित्यानन्द-रूप 'मुक्ति' का उद्भव होता है।

'कौल आगमों' के जानकारों का यह कहना है कि सच्चा योग तो वह है, जिसके द्वारा इस परम तत्त्व की अनुभूति प्राप्त होती है कि शक्ति शिव (परम-ब्रह्म) या गुरु से अभिन्न है। 'सहस्रार' में जब

'कुण्डलिनी' का संयोग 'परम-शिव' से होता है, तब 'ब्रह्म-नाड़ी' से होकर नित्यानन्द-रूप अमृत की धारा प्रवाहित हो उठती है और उससे 'मूलाधार' तक के समस्त चक्रों में स्थित देवता तथा शक्तियाँ परितृप्त हो जाती हैं। जीव और परमात्मा के ऐक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति का उस परम सत्ता से कैसा सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध को 'तत् त्वमसि' यह महा-वाक्य भी व्यक्त करता है।

अब 'महा-कुण्डलिनी' सृष्टि-क्रम में विश्वात्मक तत्त्वों की रचना करती हुई नीचे उतरने लगती है। यह क्रम 'लय-क्रम' से सर्वथा विपरीत है। इस क्रम में सूक्ष्म-तम शिव-तत्त्व से प्रारम्भ कर स्थूल-तम पृथ्वी-तत्त्व की सृष्टि होती है। इस प्रकार विश्व के समस्त तत्त्वों की सृष्टि होती है और वे स्थिति में रखे जाते हैं तथा जीव फिर से अविद्या (माया) से अवगुण्ठित होकर शरीर-बद्ध हो जाता है। इस अवस्था में 'कुण्डलिनी' भी पुनः पूर्व-वत् 'मूलाधार' में निश्चेष्ट होकर स्थिर हो जाती है। ऊपर चढ़ने और नीचे उतरने की इस क्रिया में मन का शिव-स्थान में विलय हो जाता है और जीवात्मा दिव्यता को प्राप्त करती है।

जो व्यक्ति इस योग का अभ्यास करता है, वह दिन-प्रतिदिन न केवल स्वयं माया, मृत्यु और विनाश से बच कर 'मुक्ति' को प्राप्त करने में सफल होता है किन्तु सर्व-दया-मय श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में आसक्त अन्य लोगों के भी मोक्ष-लाभ करने में सहायक होता है। 'तन्त्रान्तर' में कहा है कि—

महा-कुण्डलिनीं शक्तिं, यो भजेत् तु भुजङ्गिनीं। स कृतार्थः स धन्यश्च, स दिव्यो वीर-सत्तमः॥

अर्थात्—जो श्रेष्ठ वीर-साधक सर्प-रूपिणी 'महा-कुण्डलिनी' की उपासना सम्यक् रूप से करता है, वह मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है और अन्त में दिव्यत्व का लाभ करता है।

बढ़े-चढ़े तान्त्रिक साधक 'कुण्डलिनी'-योग का खूब अभ्यास करते हैं। इसी से उन्हें 'कौल' अर्थात् 'कुण्डलिनी (कुल-पथ) के मार्ग से सुपरिचित' नाम से अभिहित किया जाता है। यह मार्ग 'लिङ्ग-त्रय' से होकर जाता है, जो क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म और कारण अवस्थाओं के प्रतिनिधि-रूप हैं।

साधक इन अवस्थाओं को पार कर चौथी तुरीय अवस्था को प्राप्त करता है, जो भावातीत है और गुरु या परम-शिव का स्थान है। 'कौल' की यह अवस्था तीन उप-भावों (पशु, वीर और दिव्य) को पार करने पर प्राप्त होती है।

'पशु-भाव' में व्यक्ति अष्ट-पाशों से जकड़ा हुआ रहता है; 'वीर-भाव' में साधक माया-पाशों को छिन्न-भिन्न करने के लिए किसी भी सङ्घर्ष के लिए सदा प्रस्तुत रहता है और 'दिव्य-भाव' में जीवात्मा दिव्यत्व को प्राप्त कर लेती है और सभी प्रकार का द्वैत-भाव नष्ट हो जाता है।

'तन्त्र'-शास्त्र की जैसी शिक्षा है, उसके अनुसार इन भावों की स्थितियाँ सात विभिन्न आचारों का पालन करने पर क्रमशः प्राप्त होती हैं। ये आचार वास्तव में 'आत्म-शुद्धि' के विभिन्न स्तर या साधना-प्रकार हैं। इनका सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर के सात मुख्य चक्रों से है। साथ ही 'वेदान्त-दर्शन' की सप्त ज्ञान-भूमियों से इनका समन्वय है।

संक्षेप में 'कुण्डलिनी'-योग का यह परिचय यहाँ दिया गया है। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक जान पड़ता है कि 'लय-क्रम' का परिचय थोड़े विस्तार के साथ दिया जाए। 'कुण्डलिनी' के आरोहण के साथ-साथ कैसे तत्त्वों का विलय होता है, इसका ज्ञान जिज्ञासु-बन्धुओं के लिए न केवल रुचि-कर होगा, किन्तु ज्ञान-वर्द्धक भी।

४. 'कुण्डलिनी' - गति द्वारा तत्त्वों का लय

'कुण्डलिनी' के जाग्रत् होने पर वह ऊपर की ओर गति-शील होती है। ज्यों-ज्यों वह अग्रसर होती है, उसके मार्ग में पड़नेवाले तत्त्वों का लय होता जाता है।

सबसे पहले 'मूलाधार चक्र' में अवस्थित ब्रह्मा, डाकिनी शक्ति और अन्य देवता, प्राणेन्द्रिय तथा पंखुड़ियों पर के चारों वर्ण पृथ्वी-बीज 'लं' में गन्ध-तत्त्व-सहित लय होकर 'कुण्डलिनी' के शरीर में लीन हो जाते हैं।

तदनन्तर साधक द्वारा ऊपर को प्रेरित की गई 'कुण्डलिनी' जीवात्मा-सहित 'स्वाधिष्ठान चक्र' में प्रविष्ट होती है। 'कुण्डलिनी' के प्रवेश के साथ ही स्वाधिष्ठान की पंखुड़ियाँ तुरन्त ऊर्ध्व-मुख रूप में विकसित हो जाती हैं। यहाँ महा-विष्णु, राकिनी शक्ति और कमल में अवस्थित अन्य देवता पंखुड़ियों पर स्थित छहों वर्णों-सहित लय होते हैं। ये सब और गन्ध-तत्त्व 'रस' में लीन हो जाते हैं। 'कुण्डलिनी' के शरीर में कारण-रूप से स्थित पृथ्वी-बीज 'लं' वरुण-बीज 'वं' में लय हो जाता है। यह वरुण-बीज भी 'कुण्डलिनी' के शरीर में लीन हो जाता है।

अब साधक के मूल-मन्त्र द्वारा 'कुण्डलिनी' और भी ऊपर चल कर जीवात्मा और रस-तन्मात्रा के साथ 'मणिपूर चक्र' में प्रवेश करती है। इस स्थान पर रुद्र, लाकिनी-शक्ति और चक्र में अवस्थित अन्य देवता, दश-दलों पर स्थित दशों वर्ण तथा रस-तन्मात्रा इन सबका 'रूप' में लय हो जाता है। 'कुण्डलिनी' के शरीर में कारण रूप से स्थित वरुण-बीज 'वं' — तेजस्-बीज 'रं' में लय हो जाता है और यह तैजस् बीज भी 'कुण्डलिनी' के शरीर में लीन हो जाता है।

इसके बाद साधक द्वारा मूल-मन्त्र की सहायता से 'कुण्डलिनी' का जीवात्मा-सहित 'अनाहत-चक्र' में प्रवेश होता है।

यहाँ साधक को कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है क्योंकि 'मणिपूर' और 'अनाहत चक्रों' के बीच एक कठिन गाँठ है, जिसका नाम 'ब्रह्म-ग्रन्थि' है। इस ग्रन्थि का भेदन करते समय साधक साधारणतया अन्त्र-सम्बन्धी कष्ट से पीड़ित होते हैं और स्वास्थ्य भी उनका घट जाता है। इस ग्रन्थि का भेदन करना तब तक सम्भव नहीं होता, जब तक साधक पशु-भाव को सम्पूर्णतया जीत नहीं लेता और एक वीर के समान 'कुल-मार्ग' (कुण्डलिनी पथ) के इस योग की साधना के प्रसङ्ग में आते हुए विघ्नों का सामना करने का दृढ़ निश्चय नहीं रखता।

'कुण्डलिनी' जब जीवात्मा-सहित 'अनाहत चक्र' में पहुँचती है तब ईश्वर, काकिनी शक्ति और कमल में अवस्थित अन्य देवताओं तथा इसकी पंखुड़ियों पर स्थित बारहों वर्ण — 'स्पर्श'-तन्मात्रा में लय होने लगते हैं। 'कुण्डलिनी' के शरीर में स्थित रूप-तन्मात्रा और वह्नि-बीज वायु-बीज 'यं' में लय हो जाता है, जो 'कुण्डलिनी' के शरीर में लीन होता है।

अब 'कुण्डलिनी' एक दूसरी कठिन ग्रन्थि का भेदन करती है। इसका नाम है — 'विष्णु-ग्रन्थि'। 'विष्णु-ग्रन्थि' का भेदन कर 'कुण्डलिनी' — 'विशुद्ध-चक्र' की ओर अग्रसर होती है।

श्री गुरु के गुप्त उपदेशों के अनुसार 'विशुद्ध चक्र' में 'कुण्डलिनी' के पहुँचने पर सदाशिव, शाकिनी शक्ति और चक्र के अन्य अधिष्ठातृ देवता तथा पंखुड़ियों पर स्थित सोलहों वर्ण व्योम-तत्त्व एवं शब्द-

तन्मात्रा में लय हो जाते हैं। 'कुण्डलिनी' के शरीर में स्थित वायु-बीज 'यं' वागिन्द्रिय और तन्मात्रा-सहित आकाश-बीज 'हं' में लय हो जाता है, जो 'कुण्डलिनी' के शरीर में लीन होता है। तदनन्तर साधक द्वारा मन्त्र-योग की सहायता से 'कुण्डलिनी'—'आज्ञा-चक्र' की ओर बढ़ती है। यहाँ पर शिव, हाकिनी शक्ति और चक्र में अवस्थित अन्य तत्त्व आकाश-बीज 'हं' तथा शब्द-तन्मात्रा सहित अहङ्कार-तत्त्व में लय हो जाते हैं, जो स्वयं 'कुण्डलिनी' के शरीर में लीन होता है। इसके बाद 'कुण्डलिनी' तीसरी तथा अन्तिम ग्रन्थि का भेदन करने के लिए अग्रसर होती है। इस ग्रन्थि का नाम है — 'रुद्र-ग्रन्थि'। उपर्युक्त तीनों ग्रन्थियों में सबसे कठिन ग्रन्थि यही बताई गई है।

'रुद्र-ग्रन्थि' का भेदन हो जाने पर 'कुण्डलिनी' स्वतः 'सहस्रार'-चक्र में प्रवेश कर जाती है। वहाँ वह परम शिव से लिपट कर एकाकार हो जाती है। 'कुण्डलिनी' की परा अवस्था 'महा-कुण्डलिनी'—सहस्रों सूर्य-वत् दीप्ति-मान् साथ ही सरस्वों चन्द्र-वत् शीतल एवं निरन्तर अमृत-वर्षी प्रणव के रूप में उद्घाटित होती है।

तदनन्तर अहङ्कार-तत्त्व — महा-तत्त्व या बुद्धि-तत्त्व में लय होता है। बुद्धि-तत्त्व — मनस्-तत्त्व में, मनस्-तत्त्व — प्रकृति-तत्त्व में, प्रकृति-तत्त्व — जीव-तत्त्व में, जीव-तत्त्व — नियति-तत्त्व में, नियति-तत्त्व — काल-तत्त्व में, काल-तत्त्व — राग-तत्त्व में, राग-तत्त्व — कला-तत्त्व में, कला-तत्त्व — अविद्या-तत्त्व में, अविद्या-तत्त्व — माया-तत्त्व में, माया-तत्त्व — शुद्ध-विद्या-तत्त्व में, शुद्ध-विद्या-तत्त्व — ईश्वर-तत्त्व में, ईश्वर-तत्त्व — सदाशिव-तत्त्व में, सदाशिव-तत्त्व — शक्ति-तत्त्व में, शक्ति-तत्त्व — शिव-तत्त्व में और शिव-तत्त्व — परम शिव में लीन होता है।

कवली-कृत-निःशेष-तत्त्व-ग्राम-स्वरूपिणी।

अर्थात् वह छत्तीसों तत्त्वों को अपने में लीन कर लेती है और अकेली एक-मात्र वही रहती है।

जब शिव-तत्त्व का परम शिव में लय हो जाता है, तब 'लय-योग' के सर्वोच्च लक्ष्य की सिद्धि होती है। परम शिव या पर-सम्बित् में छत्तीसों तत्त्वों के लय के साथ-साथ संहार या लय का क्रम पूरा हो जाता है। जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य हो जाता है। वह अपने वास्तविक 'स्व' को पा लेती है और साधक आनन्द-मय मुग्धता में अनुभव करता है कि 'मैं अन्य कोई नहीं, ब्रह्म ही हूँ' जैसा कि 'गन्धर्व तन्त्र' में कहा है—

अहं ब्रह्मास्मि विज्ञानाद्, अज्ञानो विलयो भवेत्।

सोहमित्येवं सञ्चिन्त्य, विहरेत् सर्वदा प्रिये॥।

‘त्रिवली’

★ कापालिक श्री उद्बोधनानन्द जी

‘अरे मेरे उस्ताद!’ शागिर्द बोला, ‘लगता है, तुम्हारे चमक उठने का समय आ गया। जिसने मौके का फायदा नहीं उठाया, उसने समझदारी ही कहाँ दिखाई! कुछ करेण्ट टॉपिक चुनकर प्रवचन करो, तो लोगों पर फर्स्ट क्लास इम्प्रेसन पड़े। जैसे कि आजकल ‘शक्ति-पात’ और ‘कुण्डलिनी’ का पूरा क्रेज़ है! जहाँ देखो, वहीं ‘तन्त्र’ की चर्चा और ‘कुण्डलिनी’-जागरण की बात! जरा, अपनी जादू की छड़ी उठाओ, कुछ वर्क की चमक दिखाओ। जरा, तुम्हारा करिश्मा भी देखें।’

‘बड़ी विचित्र बात है! अजीब-सा गोरख-धन्धा है। माया की पकड़ है और मूलाधार में बड़े आराम से सोई प्रपञ्चेश्वरी माई चक्कर चला रही है! न जगती है, न जागने देती है! जाने कैसे जगेगी, यह भी नहीं पता! अँधेरे में टटोलना! जब ब्रह्माजी को ही योग-निद्रा की प्रार्थना करनी पड़ी और प्रथम अध्याय से उसी को जगाने की बात चल पड़ी, सो अनादि-काल से चलती हुई अनन्त काल तक चलती ही चली। ‘वेद’ ने भी ‘चरैवेति चरैवेति’—चलने की ही बात चलाई। तन्त्र ने चक्रार्चन का चक्कर चलाया और सब चलते-चलते....’

‘हत्तेरे की उस्ताद! चक्कर का घन-चक्कर करके मेरे तो सिर का चरखा ही चला दिया! बड़े रहस्य-मय बन कर नाटक शुरू किया! कुछ ठोस बात करो, कुछ ठीक से बोलो....’

आपके समक्ष एक छोटे से अद्भुत श्लोक को रख रहा हूँ। जरा मनन-पूर्वक देखिए—

प्रकाशमाना प्रथमे प्रयाणे, प्रति प्रयाणेऽमृतायमानाम्।

अन्तः-पदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्द - रूपाममलां प्रपद्ये।।

‘कुण्डलिनी’ को प्रातः शय्या-कृत्य के समय ‘सुलाने’ का श्लोक — लेकिन सब तत्त्व तो यहीं भरा है। जगाने का श्लोक भी पढ़कर देखिए—

ध्यायेत् कुण्डलिनी - देवीं, स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्टिनीम्।

श्यामां सूक्ष्मां सृष्टि-स्थिति-संहार-रूपां....ध्यायेत् ऊर्ध्व-गामिनीम्।।

ध्यान में अर्थात् ‘भावना-योग’ से ‘कुण्डलिनी’ को ऊर्ध्व-गामिनी, ऊपर उठनेवाली — कहाँ से? ‘मूलाधार’ के ‘स्वयम्भू लिङ्ग’ में साढ़े तीन चक्कर लिपटी, ‘सुषुम्ना’ के अन्दर ‘चित्रिणी नाड़ी’ में प्रवेश करती हुई, ‘षट्-चक्र’-भेदन-पूर्वक। जरा रुकिए यहाँ। साथ-साथ ‘ब्रह्म’-ग्रन्थि, ‘विष्णु’-ग्रन्थि, ‘रुद्र’-ग्रन्थि—भेदन-पूर्वक सहस्रार के परम शिव से रमण करनेवाली, अमा-कला-युक्त श्रीमद्-आद्या-स्वरूपा, कैवल्य-रूपिणी, मोक्ष-दायिनी, परमानन्द-रूपिणी, अमृत-कारिणी, अमृत-मय-कारिणी, परम-सिद्धि-दायिनी....

‘उस्ताद! गड़बड़ा रहे हो। ‘मोक्ष-दायिनी’ कहकर ‘अमृत’, तब ‘परम-सिद्धि’—यह कैसी बहकी-बहकी बातें? लगता है, करारे की लगी है! होश-हवास में समझ कर बोलो....’

‘परम लक्ष्य विदेह-वत् जीवन-मुक्ति है, जो गीता—तत्त्व का सार है—

‘प्रकृतिः त्वां नियोक्षसि’—‘यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।’

इस भाव की प्राप्ति ही महान् लक्ष्य-प्राप्ति का प्रतीक है क्योंकि—

कालिका तु कृष्ण-रूपा स्यात्।

माई ने वहीं इसको स्पष्ट किया है। 'क्रम-स्तव' के पद्य जान-बूझ कर नहीं कह रहा हूँ क्योंकि तब पूरा स्तव ही बोलना पड़ेगा। तो जीवन-मुक्ति तो प्राप्त हुई, परन्तु जड़ भरत के समान—

एक मृगी के कारने भरत धरी दो देह!

वह आसक्ति न घसीट ले जाय, इसलिए अमृत-तत्त्व और लौकिक परम सिद्धि-तत्त्व भी आ जायगा। यह रक्षक तत्त्व होगा। लोक-तृष्णा की वृत्ति को सन्तुष्ट करते हुए 'जीवन-मुक्ति'-तत्त्व का प्रति-क्षण परीक्षण कराता रहेगा। जरा फिसल के देखो तो बेटा! देखें, सम्हलते हो कि गिर जाते हो। सचमुच में **जीवन-मुक्ति के अधिकारी** हो या सिद्धि-वैभव पाकर उसी में रम गए हो और **'तलवार की धार पे धावने' है** — इसका दूसरा मतलब क्या सिखाया गया है? अजी, अर्थ तो एक ही होता है, अनर्थ ही अनेक होते जाते हैं। भले ही आप उसे आदर से देखें या अनादर से। यह रही आपकी मर्जी!

'अरे उस्ताद! तुम तो आज सम्हाल के बाहर हो बे-लगाम हो गए हो! पहले श्लोक से 'कुण्डलिनी' को सुलाया क्यों, यह बताने के पहले वह छलाँग लगाई कि क्या कहें! पहले से ही बताओ।'

'शाबर-मन्त्रों' में नाथ-सम्प्रदाय का विशिष्ट स्थान रहा है और एक मन्त्र में प्रथम श्लोक को स्पष्ट करने के लिए बहुत सुन्दर मन्त्र आया है। सुनिए—

अयसा रूप, अयसा शब्द, गुरु गोरखनाथ लखाया....जोत जगाया।

मेरे, आपके, सभी के अन्दर वह दीप है, जो प्रज्वलित नहीं है। उसी को जलाकर अन्तःस्थ को प्रकाशित कर देना — यही सिद्ध गुरु का काम है। वह भी कैसा? जैसा सिद्ध गुरु ने स्वयं पहचाना, स्वयं देखा, वही ज्योति, शिष्य की सुप्त दीप-शिखा को प्रज्वलित-प्रकाशित करके 'दिखा दिया'— तो शिष्य ने भी 'देख' लिया — वह सिद्ध हो गया क्योंकि 'वही' 'परम सत्य' है। इससे अधिक और क्या खोलकर कहें?

यही है **'प्रकाश-मानां प्रथमे प्रयाणे'** — प्रथम बार जब माई चलेगी, तो प्रकाश-मयी होगी। हाँ, वह अँधेरे को दूर करेगी; उजाला होगा; दिखाई देगा—साफ-साफ दिखाई देगा; स्पष्ट होगा। सत्य होगा क्योंकि दिखाई देगा। वह आँखों देखी बात सच होगी।

अज्ञान-रूपी अन्धकार दूर हो गया, ज्ञान प्राप्त हुआ। अद्भुत विराट् क्षेत्र में आप प्रवेश कर गए। प्रत्यक्ष प्रतीति आपको हो गई। उसके लिये किसी भी साक्ष्य की जरूरत नहीं रही।

तब आइए दूसरे चरण पर — **'प्रति-प्रयाणेऽमृताय-माना'**। इसे चौथे पद से जोड़कर — **'आनन्द-रूपाममलां प्रपद्ये'** — पुनः प्रति बार जब माई 'कुल' से 'अकुल' को चलेगी, तो वही अमृत-तत्त्व का सिञ्चन करते हुए आपको परमानन्द देगी।

माई आनन्द-रूपा है। प्रत्येक आनन्द वा सुख की अनुभूति जो आप करते हैं, वह यही 'कुण्डलिनी'-रूपा माई कराती है क्योंकि 'पिण्ड'-रूप में 'ब्रह्म'-स्वरूप यही जीवों में स्थित है। सुखानुभूति चाहे जैसी हो, 'कुण्डलिनी'-रूप से ही होगी। यही जिह्वाग्र पर आकर प्रथम तत्त्व ग्रहण करेगी; स्फुरण कर आनन्द की अनुभूति कराएगी। यही 'स्वाधिष्ठान' द्वारा विषय-सुख देगी; यही नेत्र समीप से सुन्दर दर्शन कराएगी; यही 'श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च' रूप से तत्-सुख देगी और 'ब्रह्म-रन्ध्र' से परम सत्य 'मोक्ष' तक दे डालेगी, लेकिन अभी तो सो रही है, जगेगी कैसे?

बस, जहाँ माई को जगाने की बात आई, वहीं सब झंझट शुरू हो गया — कोई कैम्प-शिविरों में सैकड़ों पर

एक साथ 'शक्ति-पात' करके जगाने का दावा करेगा, मानों कि 'शक्ति-पात' न हुआ, सामूहिक मुण्डन कराना हो गया! कोई पत्र द्वारा ही जगा देगा — कोई दुरूह योगासनों का प्रयोग बताएगा, तो कोई शक्ति-दान की चर्चा करेगा! कहीं कुम्भक की सिद्धि से, कहीं अष्ट-मकार से, कहीं वीर-साधन से और कहीं स्पर्श मात्र....'

'यही सबसे ठीक है', शागिर्द बोला, 'उस्ताद, तुम तो अपनी फोटो दिखाकर 'शक्ति-पात' का दावा करो। इससे बिजनेस भी चलेगा; तुम्हारा नाम भी होगा। यह कहना कि पूर्ण 'शक्ति-पात' पर फोटो में तुम दिखाई दोगे, नहीं तो कुछ नहीं दिखाई देगा और मैं हर पते पर, सादा बिना प्रिण्ट का भेज दूँगा।'

'क्यों भूलते हैं? आप स्वयं नित्य शुद्ध प्रबुद्ध हैं। आप में भी माई है और यदि वह चाहती नहीं है, तो इस ओर आपकी अभिरुचि क्यों हुई? आपकी अन्तरात्मा ने हमेशा गलत काम करने से रोका है और सही कार्य के लिए आपको हार्दिक सन्तोष दिया है। क्यों अपने आपको धोखा देते हैं? क्यों नहीं अन्तरात्मा की बात सुनते? मन को शान्त कीजिए। प्रति क्षण आप आगे ही बढ़ रहे हैं और पूरी विश्वास-श्रद्धा से जुट जाइए—'मा फलेषु कदाचन' नहीं है, घोषणा है—

त्वामुपैहि शरणं परमेश्वरि! आराधिता सैषा भोग-स्वर्गपवर्गदा।

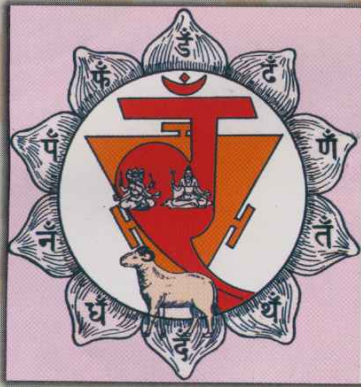
माई जरूर देगी। जहाँ तक आपकी साधना है, वहाँ तक वासना पूरी होगी। इसी से सुरथ निज राज्य पाकर एवं मन्वन्तराधिपति बनकर भी आवागमन के चक्कर में ही रह गए, परन्तु समाधि वैश्य ज्ञान प्राप्त कर—'सङ्ग विच्युति-कारक'—मोक्ष पा गए।

मोक्ष का दावा 'कौल मार्ग' ही करता है। श्रीकृष्ण के कृपा-स्वरूप कंस, जरासन्ध, गोपियाँ तो तर गई—मोक्षाधिकार मिला, परन्तु अत्यन्त प्रेम — सखा-भाव से अर्जुन मात्र स्वर्ग के अधिकारी बने। पाण्डव भी स्वर्ग ही गए। भीष्म को मोक्ष नहीं मिला, आज भी सब उनका तर्पण करते हैं। प्रमाण के लिए युधिष्ठिर का नरक-दर्शन इसकी सम्पुष्टि करेगा। और इधर महिषासुरादि भी सायुज्य-मुक्ति पा गए—'येन प्राप्तं सायुज्यमोक्षया'—आपका रहस्य (वैकृतिक) कहता है।

विज्ञान की दृष्टि से भी सुषुम्णा से ही इन्द्रियाँ दुःख-सुखानुभव करती हैं और 'हाइपोथेलमस' जो ब्रेन (मस्तिष्क) का सबसे निचला भाग है, उसी के माध्यम से अतीन्द्रिय शक्ति का अनुभव होता है, परन्तु अभी विज्ञान को बहुत आगे बढ़ना है और शायद शताब्दियों के बाद ही विज्ञान की व्याख्या हमारी तन्त्र की धारणा को सम्पुष्ट करने के योग्य होगी।

सभी साधन माँ को ही जगाएँगे और आपको भी अनुभूति कराएँगे। बस, एकै साथ सब सधे, सब साधे सब जाय! इसी पर विचार की आवश्यकता है। मनन-पूर्वक साधना की जाय, तो सब सुलभ है। 'कुण्डलिनी' ही जग गई, तब बचा क्या? धन्योऽहं कृत-कृत्योऽहं, सफलं मम जीवनम्।

तब तो सब हो ही गया! महा-काल पर स्थित वही खप्परवाली माई पिण्ड-रूप शरीर में 'कुण्डलिनी'-रूपा स्थित होकर सोई है। 'ककरादि-सहस्र-नाम' में वचन आया है—'शक्ति-पातं शतं भवेत्'। यह कैसे? पचास मातृका-वर्णों को अनुलोम-विलोम-क्रम से शक्ति-युक्त कर देने से वचन का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। जब 'कुण्डलिनी' आरोह-अवरोह-क्रम से चलेगी, तो शत शक्ति-पात होगा, जिसका आस्वादन आनन्द-रूपा 'त्रिवली' आपको कराएगी।

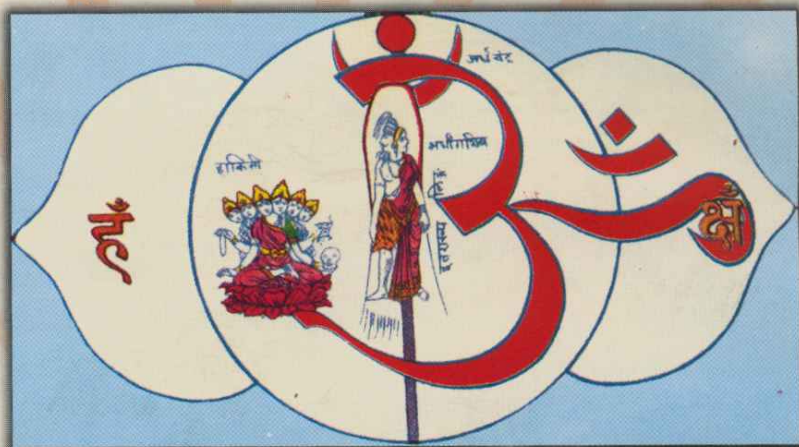


‘मणिपूर’-चक्र



‘अनाहत’-चक्र

▼	‘मणिपूर’ - चक्र	‘अनाहत’ - चक्र
१. स्थान	नाभि के सामने	हृदय के सामने
२. दल	१०	१२
३. दल की मातृकाएँ	‘डूँ-डूँ-णै- तँ-थँ-दँ- धँ-नँ-पँ- फँ’	‘कँ-खँ-गँ- घँ-ङँ-चँ- छँ-जँ-झँ- ञँ-टँ-ठँ’
४. तत्त्व और गुण	तेज प्रसारण उष्ण - वाह	वायु गति स्पर्श - ज्ञान
५. तत्त्व का रङ्ग	रक्त	धूम्र
६. आकार	त्रिकोण	षट् - कोण
७. बीज	रं	यं
८. वाहन	मेष	मृग
९. देवता	रुद्र	ईशान
१०. शक्ति	लाकिनी	काकिनी
११. तत्त्व - गुण	रूप	स्पर्श
१२. इन्द्रिय	गुदा	लिङ्ग
१३. लिङ्ग	—	वाण - लिङ्ग
१४. लोक	स्वः	महः
१५. द्वीप	कुश	क्रौञ्च
१६. कला एवं फल	प्रतिष्ठा संहार एवं पालन में समर्थ	शान्ति जितेन्द्रियत्व ईशित्व - सिद्धि



‘आज्ञा’-चक्र



‘विशुद्ध’-चक्र

प्रकाशक : श्रीऋतशील शर्मा,
चण्डी-धाम, प्रयाग-२११००६

‘विशुद्ध’-चक्र	‘आज्ञा’-चक्र	‘सहस्रार’-चक्र
कण्ठ के सामने	भू-मध्य	मूर्धन्
१६	२	१०००
अँ-आँ.... अँ-अः	‘हँ-क्षँ’	प्रत्येक वर्ण २० बार
आकाश	मन	आत्मा
श्वेत	—	—
वर्तुल	लिङ्गाकार	पूर्ण-चन्द्र
हं	ॐ	‘अँ....क्षँ’
शुभ्र हस्ति	नाद	—
सदा-शिव	शम्भु	कामनाथ
शाकिनी	हाकिनी	कामेश्वरी
शब्द	महत्	—
श्रवण-मुख	हिरण्य-गर्भ	गुरु-पादुका
—	पाताल लिङ्ग	—
जन	तप	सत्य
शात्मली	गो-मेद	पुष्कर
जानी	सर्वज्ञ	दिव्य दृष्टि
नीरोग	सर्व-दर्शी	समाधि
दीर्घ-जीवी	सर्व-सिद्धि	अमृत-पान